प्रस्तुत पुस्तक

जैन-परम्परा के आगमों में छेद-सूत्रों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन-संस्कृति का सार श्रमण-धर्म है। श्रमण-धर्म की सिद्धि के लिए आचार की साधना अनिवार्य है। आचार-धर्म के निगूढ़ रहस्य और सूक्ष्म क्रिया-कलाप को समझने के लिए छेद-सूत्रों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। जीवन, जीवन है। साधक के जीवन में अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रसंग उपस्थित होते रहते हैं। उस विषम समय में किस प्रकार निर्णय लिया जाए इस बात का सम्यक्-निर्णय एकमात्र छेद-सूत्र ही कर सकते हैं। संक्षेप में छेद-सूत्र-साहित्य जैन-आचार की कुन्जी है, जैन-विचार की अद्वितीय निधि है, जैन-संस्कृति की गरिमा है और जैन-साहित्य की महिमा है।

दशाश्रुतस्कन्ध-सूत्र पर अथवा आचारदशा पर न कोई भाष्य उपलब्ध है, न संस्कृत टीका और टब्बा ही। इस पर निर्युक्ति व्याख्या तथा चूर्णि व्याख्या उपलब्ध है। परन्तु ये दोनों ही अत्यन्त संक्षिप्त हैं।

पण्डित प्रवर, आगमधर मुनिश्री कन्हैयालाल जी 'कमल' ने आचारदशा का सम्पादन एवं मूलस्पर्शी अनुवाद बहुत ही सरल और सुन्दर किया है। श्रमणाचार के अनेक उलझे हुए प्रश्नों पर उन्होंने भाष्य एवं चूर्णि आदि प्राचीन ग्रन्थों के अनुशीलन के आधार पर अपना तटस्थ समाधान-परक चिन्तन भी दिया है। अल्प शब्दों में विवादात्मक प्रश्नों का सम्यक् समाधान करना विवेचन की कुशलता है। मुनिश्रीजी इस कला में सफल हुए हैं। आगम-साहित्य पर वे वर्षों से कुछ-न-कुछ लिखते रहे हैं। परन्तु मेरी दृष्टि में चार छेद सूत्रों पर जो अभी लेखन-कार्य किया है, वह आगम-साहित्य की परम्परा में चिरस्थायी एवं गौरवपूर्ण कहा जा सकता है।

—विजयमुनि शास्त्री

नमो नाणस्स

आयारदसा

[पढम छेद सुत्तं]

सम्पादक एवं व्याख्याक

आगम अनुयोग प्रवर्तक, श्रुत विशारद

मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'

प्रकाशक

आगम अनुयोग प्रकाशन

सांडेराव [राजस्थान]

○ छेद सुत्ताणि
[आयारदसा]

○ सम्पादक एवं व्याख्याकार
आगम अनुयोग प्रवर्तक मुनिश्री कन्हैयालालजी 'कमल'

○ प्रकाशक
आगम अनुयोग प्रकाशन
सांकलीवास, सांडेराव [राजस्थान]

○ मूल्य
पन्द्रह रुपया मात्र

○ प्रथम मुद्रण
वीर निर्वाण संवत् २५०३
वि० सं० २०३३, पौष पूर्णिमा
ई० सन् १९७७ जनवरी

○ मुद्रण
श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
दरेसी २, आगरा-४

अर्पण

—○—

अनुपम आत्मबली
श्रमण संघ के वरिष्ट प्रहरी
परम पूज्य
प्रवर्तक श्री मरुधर केशरी
मुनिश्री मिश्रीमल जी महाराज
के
कर-कमलों में

विनीत :
मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

उदारमना अर्थ सहयोगी

- ☐ उदारहृदय आगम प्रेमी श्री मिश्रीमलजी, श्री फतेहचन्दजी
  दूगड़, कुचेरा

- ☐ फरडोद (नागोर) निवासी, पूज्य पिताजी
  श्री पेमराज जी भुरट की पुण्य स्मृति में—
  —सुपुत्र श्री अमरचन्द जी, श्री घेवरचन्द जी
  श्री कुशलचन्द जी द्वारा

- ☐ श्री पारसमलजी पगारिया, कुचेरा

- ☐ आगम स्वाध्यायशीला उदारहृदया एक सुश्राविका, कुचेरा

प्रस्तुत प्रकाशन में आप उदार सज्जनों ने श्रुतज्ञान की प्रभावना हेतु जो सहयोग प्रदान किया तदर्थ संस्था आपके प्रति आभारी है।

मंत्री
आगम अनुयोग प्रकाशन

प्रकाशकीय

आगम अनुयोग प्रकाशन का उद्देश्य मुमुक्षु एवं जिज्ञासुजनों के स्वाध्याय के लिए सर्वसाधारण जनोपयोगी आगम-संस्करण प्रस्तुत करना रहा है और इस दिशा में अब तक जैनागम-निर्देशिका, अनुयोगवर्गीकरण तालिका युक्त सानुवाद स्थानांग-समवायांग एवं गणितानुयोग का प्रकाशन हुआ है।

वर्तमान में मूलसुत्ताणि के द्वितीय संस्करण का तथा सानुवाद छेदसुत्ताणि के प्रथम संस्करण का प्रकाशन हो रहा है, साथ ही स्वाध्यायसुधा के प्रथम संस्करण का प्रकाशन भी। इसमें दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र मूल-पाठ तथा भक्तामर स्तोत्र आदि स्तोत्र एवं तत्त्वार्थ सूत्र आदि कुछ दार्शनिक ग्रन्थों के मूलपाठ भी दिए गए हैं।

चार छेदसूत्रों में प्रथम छेदसूत्र प्रस्तुत आयारदशा है, इसका अपर नाम दशाश्रुतस्कन्ध भी है, हिन्दी अनुवाद सहित स्वाध्याय के लिए प्रस्तुत है।

इसी प्रकार सानुवाद प्रत्येक छेदसूत्र पृथक्-पृथक् जिल्दों में और सानुवाद चारों छेदसूत्र एक जिल्द में भी प्रकाशित करने का आयोजन है।

स्थानकवासी समाज में अनेक जगह स्वाध्याय संघ स्थापित हुए हैं, और हो भी रहे हैं—सामूहिक आध्यात्मिक साधना के लिए यह विकासोन्मुख प्रयास है।

स्वाध्यायशील सदस्यों के स्वाध्याय के लिए यह संस्करण उपयोगी सिद्ध होगा, अर्थात् इससे धार्मिक (आत्मिक) ज्ञान की अभिवृद्धि होगी।

प्रस्तुत संस्करण की एक विशेषता यह है कि दशाश्रुतस्कन्ध का आठवां अध्ययन "पज्जोसवणा कप्पदशा" जो वर्तमान में प्रख्यात कल्पसूत्र का समाचारी विभाग है आयारदशा के आठवें अध्ययन के स्थान में ही प्रकाशित किया गया है।

इस संस्करण के मुद्रण सौन्दर्य के लिए हमें श्रीमान् श्रीचन्द्र जी सुराणा "सरस" का उदार सहयोग प्राप्त हुआ है। इसके लिए अनुयोग प्रकाशन परिषद् उनका हृदय से आभार मानती है।

मंत्री
आगम अनुयोग प्रकाशन
सांडेराव (राजस्थान)

सम्पादकीय

अतीत में तीर्थंकर भगवन्तों ने चतुर्विध संघ की स्थापना के समय अणगार संघ को अणगार धर्म का महत्व वताते हुए गुरुपद का गुरुत्तर दायित्व वताया था और सागार संघ को सागार धर्म का उपदेश करते हुए अणगार संघ की उपासना का कर्तव्य भी वताया था।

अणगार धर्म के मूल पंचाचारों का विधान करते हुए चारित्राचार को मध्य में स्थान देने का हेतु यह था कि ज्ञानाचार-दर्शनाचार तथा तपाचार-वीर्याचार की समन्वय साधना निर्विघ्न सम्पन्न हो—इसका एकमात्र अमोघ साधन चारित्राचार ही है। अर्थात् ज्ञानाचार-दर्शनाचार तथा तपाचार एवं वीर्याचार चारित्राचार के चमत्कार से ही चमत्कृत हैं—इसके विना अणगार जीवन अन्धकारमय है।

चारित्राचार के आठ विभाग हैं—पाँच समिति और तीन गुप्ति। इनमें पाँच समितियाँ संयमी जीवन में भी निवृत्तिमूलक प्रवृत्तिरूपा है और तीन गुप्तियाँ तो निवृत्ति रूपा हैं ही। ये आठों अणगार-अंगीकृत महाव्रतों की भूमिका रूपा हैं—अर्थात् इनकी भूमिका पर ही अणगार की भव्य भावनाओं का निर्माण होता है।

विषय-कषायवश याने राग-द्वेषवश समिति-गुप्ति तथा महाव्रतों की मर्यादाओं का अतिक्रम-व्यतिक्रम या अतिचार यदा-कदा हो जाय तो सुरक्षा के लिए प्रायश्चित्त प्राकाररूप कहे गये हैं।

फलितार्थ यह है कि मूलगुणों या उत्तरगुणों में प्रतिसेवना का घुन लग जाय तो उनके परिहार के लिए प्रायश्चित्त अनिवार्य हैं।

प्रायश्चित्त दस प्रकार के हैं—इनमें प्रारम्भ के छह प्रायश्चित्त सामान्य दोषों की शुद्धि के लिए हैं और अन्तिम चार प्रायश्चित्त प्रवल दोषों की शुद्धि के लिए हैं।

छेदार्ह प्रायश्चित्त अन्तिम चार प्रायश्चित्तों में प्रथम प्रायश्चित्त है। अत. आयारदशादि सूत्रों को इसी प्रायश्चित्त के निमित्त से छेद सूत्र कहा गया है।

इन सूत्रों में तीन प्रकार के चारित्राचार प्रतिपादित हैं—१ हेयाचार, ज्ञेयाचार और ३ उपादेयाचार।

समवायांग, उत्तराध्ययन और आवश्यक सूत्र में[1] कल्प और व्यवहार सूत्र के पूर्व आयारदशा का नाम कहा गया है—अतः छेद सूत्रों में यह प्रथम छेद-सूत्र है। इस सूत्र में दस दशाएँ हैं—प्रथम तीन दशाओं में तथा अन्तिम दो दशाओं में हेयाचार का प्रतिपादन है।

चौथी दशा में अगीतार्थ अणगार के लिए ज्ञेयाचार का और गीतार्थ अणगार के लिए उपादेयाचार का कथन है।

पाँचवीं दशा में उपादेयाचार का प्रतिपादन है।

छठी दशा में अणगार के लिए ज्ञेयाचार और सागार (श्रमणोपासक) के लिए उपादेयाचार का कथन है।

सातवीं दशा में इसके विपरीत है अर्थात् अणगार के लिए उपादेयाचार है और सागार के लिए ज्ञेयाचार है।

आठवीं दशा में अणगार के लिए कुछ हेयाचार हैं कुछ ज्ञेयाचार और कुछ उपादेयाचार भी हैं।

इस प्रकार यह आयारदशा अणगार और सागार दोनों के स्वाध्याय के लिए उपयोगी हैं।

कल्प-व्यवहार आदि में भी इसी प्रकार हेय ज्ञेय और उपादेयाचार का कथन है।

छेद प्रायश्चित्त की व्याख्या करते हुए व्याख्याकारों ने आयुर्वेद का एक रूपक प्रस्तुत किया है। उसका भाव यह है कि किसी व्यक्ति का अंग या उपांग रोग या विष से इतना अधिक दूषित हो जाए कि उपचार से उसके स्वस्थ होने की सर्वथा सम्भावना ही न रहे तो शल्य-क्रिया से दूषित अंग या उपांग का छेदन कर देना उचित है, पर रोग या विष को शरीर में व्याप्त नहीं होने देना चाहिए क्योंकि रोग या विष के व्याप्त होने पर अशान्तिपूर्वक अकाल मृत्यु अवश्यम्भावी है किन्तु अंग छेदन से पूर्व वैद्य का कर्त्तव्य है कि रुग्ण व्यक्ति को और उसके निकट सम्बन्धियों को समझावे कि आपका अंग या उपांग रोग या विष से इतना अधिक दूषित हो गया है—अब केवल औषधोपचार से स्वस्थ होने की सम्भावना नहीं है, यदि आप जीवन चाहें और बढ़ती हुई निरन्तर वेदना से मुक्ति चाहें तो शल्य-क्रिया से इस दूषित अंग-उपांग का छेदन करवालें; यद्यपि शल्य-क्रिया से अंग-उपांग का छेदन करते समय तीव्र वेदना होगी, पर होगी थोड़ी देर, इससे शेष जीवन वर्तमान जैसी वेदना से मुक्त रहेगा।

---

१ सम० स० २६, सू० १। उत्त० अ० ३१, गा० १७। आव० अ० ४, आया० प्र० सूत्र।

इस प्रकार समझाने पर वह रुग्ण व्यक्ति और उसके अभिभावक अंग छेदन के लिए सहमत हो जावें तो भिषगाचार्य का कर्त्तव्य है कि अंग-उपांग का छेदन कर शेष शरीर एवं जीवन को व्याधि और अकाल मृत्यु से बचावें।

इस रूपक से आचार्य आदि भी अणगार को यह समझावें कि दोष प्रतिसेवना से आपके उत्तर गुण इतने अधिक दूषित हो गये हैं अब इनकी शुद्धि आलोचनादि सामान्य प्रायश्चित्तों से सम्भव नहीं है। यदि आप चाहें तो प्रतिसेवना काल के दिनों का छेदन कर आपके शेष संयमी जीवन को सुरक्षित किया जाय। अन्यथा न समाधिमरण होगा और न भव-भ्रमण से मुक्ति होगी। इस प्रकार समझाने पर वह अणगार यदि प्रतिसेवना का परित्याग कर छेद प्रायश्चित्त स्वीकार करे तो आचार्य उसे आगमानुसार छेद प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करे।

छेद प्रायश्चित्त से केवल उत्तर गुणों में लगे हुए दोषों की ही शुद्धि होती है। मूलगुणों में लगे हुए दोषों की शुद्धि मूलार्ह आदि तीन प्रायश्चित्तों से होती है।

इन छेद सूत्रों का अर्थागम विस्तृत व्याख्यापूर्वक स्वयं वीतराग भगवन्त ने समवसरण में चतुर्विध संघ को एवं उपस्थित अन्य सभी आत्माओं को श्रवण कराया था। ऐसा उपसंहार सूत्र से स्पष्टीकरण हो जाता है अतः इन सूत्रों की गोपनीयता स्वतः निरस्त हो जाती है।

छेद सूत्रों के सम्पादन में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि केवल मूल के अनुवाद से सूत्र का हार्द स्पष्ट नहीं होता है अतः मैंने भाष्य का अध्ययन करके सूत्र का भाव समझने के लिए सर्वत्र परामर्श दिया है। अन्य भी कई कठिनाइयाँ हैं जिनका उल्लेख यहाँ उचित नहीं है।

आयारदशा के इस संस्करण की भूमिका मेरे चिर-परिचित पण्डितरत्न श्री विजय मुनि जी ने मेरे आग्रह को मान देकर लिखी है, अतः उनका यह सहयोग मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

अन्त में मैं उन सब सहयोगियों का कृतज्ञ हूँ जो इस पुण्य यज्ञ की सफलता में सहयोगी बने हैं। अनुवाद का सहयोग पं० हीरालाल जी शास्त्री, ब्यावर ने किया और पं० रत्न श्री रोशन मुनि जी ने तथा श्री विनय मुनि ने प्रार्थना-प्रवचन एवं अन्य आवश्यक कृत्य करके अधिक से अधिक समय का लाभ लेने दिया अतः इनका विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

अनुयोग प्रवर्तक

मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

अनुशीलन से निशीथ-चूर्णिगत धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के सम्बन्ध में नूतन तथ्य सामने आये हैं, तथा इतिहास सम्बन्धी अनेक बातें प्रकाश में आई हैं। निशीथ चूर्णि एक महान् आकर-ग्रन्थ है।

छेद-सूत्रों का महत्त्व

छेद-सूत्रों में जैन श्रमणों के आचार से संबद्ध प्रत्येक विषय का विस्तार के साथ वर्णन उपलब्ध होता है। आचार सम्बन्धी छेद सूत्रगत उस विवेचन को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—उत्सर्ग-मार्ग, अपवाद-मार्ग, दोष-सेवन तथा प्रायश्चित्त। किसी भी विषय के सामान्य विधान को उत्सर्ग कहा जाता है। परिस्थिति विशेष में तथा अवस्था विशेष में किसी विशेष विधान को अपवाद कहा जाता है। दोष का अर्थ है—उत्सर्ग और अपवाद का भंग। खण्डित व्रत की शुद्धि के लिए समुचित दण्ड ग्रहण किया जाता है, उसे प्रायश्चित्त कहा गया है। किसी भी विधान के परिपालन के लिए चार बातें आवश्यक होती हैं। सर्वप्रथम किसी सामान्य नियम की संरचना की जाती है। उसके बाद देश, काल, पालन करने की शक्ति तथा उपयोगिता को संलक्ष में रखकर उसमें थोड़ी-बहुत छूट दी जाती है। यदि इस प्रकार की छूट न दी जाए तो नियम का परिपालन करना प्रायः असम्भव हो जाता है। परिस्थिति विशेष के लिए अपवाद-व्यवस्था भी अनिवार्य है। एक मात्र विभिन्न प्रकार के नियमों के निर्माण से कोई विधान पूर्ण नहीं हो जाता। उसके समुचित पालन के लिए तथाभूत दोषों की सम्भावना का विचार भी आवश्यक है। यदि दोषों की सत्ता स्वीकार की जाती है, तो उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त भी आवश्यक है। आचार-सम्बन्धी नियम-उपनियमों का, जिस' प्रकार का विवेचन जैन-परम्परा के छेद-सूत्र-साहित्य में उपलब्ध होता है, उससे मिलता-जुलता बौद्ध भिक्षुओं के आचार नियमों का विवेचन बौद्ध-परम्परा के पालि ग्रन्थ विनय-पिटक में भी उपलब्ध होता है। भारतीय-साहित्य के मूर्धन्य समीक्षकों का यह कथन सत्य है, कि जैन-परम्परा के छेद-सूत्रों के नियमों की विनय-पिटक के नियमों से तुलना की जा सकती है। तथा वैदिक-परम्परा के कल्प-सूत्र, श्रोत सूत्र और गृह सूत्रों के आचार-नियमों की समीक्षात्मक तुलना छेद-सूत्रों के नियमों से की जा सकती है।

छेद सूत्रों की उपयोगिता

इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, कि छेद-सूत्रों का विषय पर्याप्त गहन एवं गम्भीर है। यदि कोई व्यक्ति उसे समग्र रूप से समझे बिना ही उसकी दो-चार बातों को लेकर ही उसकी निन्दा या दुरालोचना करने बैठ जाए, तो यह

उस व्यक्ति का स्वयं का अधूरापना होगा। मेरा अपना विचार तो यह है, कि जैन-परम्परा के आगमों में छेद-सूत्रों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन-संस्कृति का सार श्रमण-धर्म है। श्रमण-धर्म की सिद्धि के लिए आचार की साधना अनिवार्य है। आचार-धर्म के निगूढ़ रहस्य और सूक्ष्म क्रिया-कलाप को समझने के लिए छेद-सूत्रों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। जीवन, जीवन है। साधक के जीवन में अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रसंग उपस्थित होते रहते हैं। ऐसे विषम समयों में किस प्रकार निर्णय लिया जाए इस बात का सम्यक्-निर्णय एकमात्र छेद-सूत्र ही कर सकते हैं। संक्षेप में छेद-सूत्र-साहित्य; जैन-आचार की कुञ्जी है, जैन-विचार की अद्वितीय निधि है, जैन-संस्कृति की गरिमा है और जैन-साहित्य की महिमा है।

प्रकार यह दशाश्रुत स्कंध सूत्र अथवा आचार-दशा श्रमण-जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

आगमों का व्याख्या साहित्य

आगमों पर आज तक जितना भी व्याख्या-साहित्य लिखा गया है, उसे षड्-विभागों में विभक्त किया जा सकता है—निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, संस्कृत टीका, लोकभाषा टव्वा तथा आधुनिक सम्पादन एवं अनुवाद। निर्युक्ति तथा भाष्य ये दोनों व्याख्याएँ प्राकृत में लिखी जाती रही हैं। दोनों में अन्तर यह है, कि निर्युक्ति व्याख्या पद्यमयी होती है, तथा भाष्य भी पद्यमय होता है, परन्तु विभिन्न पदों की व्याख्या निर्युक्ति है तथा विस्तृत विचारात्मक व्याख्या भाष्य है। जिसमें अनेक विषयों का यथाप्रसंग समावेश कर दिया जाता है। अतः निर्युक्ति और भाष्य जैन-आगमों की पद्यबद्ध व्याख्याएँ हैं। इनकी रचना प्राकृत-भाषा में ही होती रही है। निर्युक्ति व्याख्या में मूल ग्रन्थ के प्रत्येक पद या वाक्य का व्याख्यान न होकर विशेष रूप से पारिभाषिक शब्दों की ही व्याख्या की जाती है। निर्युक्ति की व्याख्यान शैली निक्षेप पद्धति के रूप में प्रसिद्ध है। यह अत्यन्त प्राचीन व्याख्या पद्धति रही है। निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु छेद-सूत्रकार-चतुर्दश-पूर्वधर आचार्य भद्रबाहु से भिन्न हैं। निर्युक्तिकार भद्रबाहु ने अपनी दशाश्रुत स्कंध निर्युक्ति एवं पंचकल्प निर्युक्ति के प्रारम्भ में छेद-सूत्रकार भद्रबाहु को नमस्कार किया है।

निर्युक्ति का मुख्य प्रयोजन पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या रहा है। इन शब्दों में छिपे हुए अर्थ बाहुल्य को अभिव्यक्त करने का सुन्दर श्रेय विशालमति भाष्यकारों को ही दिया जाना चाहिए। कुछ भाष्य निर्युक्तियों पर हैं, कुछ केवल मूल सूत्रों पर। इस विशाल प्राकृत-भाष्य-साहित्य का जैन-साहित्य में ही नहीं, वैदिक और बौद्ध-साहित्य में भी एक विशिष्ट स्थान रहा है। क्योंकि इन भाष्यों में यथाप्रसंग और यथास्थान वैदिक और बौद्ध मान्यताओं का उल्लेख होता रहा है। कभी-कभी खण्डन के रूप में भी उनका वर्णन किया है और कहीं पर अपने पक्ष को स्थिर करने के लिए भी उनका उपयोग किया गया है। भाष्यकार के रूप में दो आचार्य प्रसिद्ध है—जिनभद्रगणि और संघदासगणि।

जैन आगमों की तीसरी व्याख्या पद्धति चूर्णि रही है। चूर्णि व्याख्या न अति संक्षिप्त होती है और न अति विस्तृत। चूर्णि व्याख्या की एक विशेषता यह भी रही है कि वह प्राकृत तथा संस्कृत दोनों भाषाओं का सम्मिश्रण होती है। यही कारण है, कि जैन-आगमों की प्राकृत तथा संस्कृत मिश्रित व्याख्या को चूर्णि कहा जाता है। इस प्रकार की कुछ चूर्णियाँ आगम भिन्न ग्रन्थों

पर भी उपलब्ध होती हैं। चूर्णिकार के रूप में जिनदासगणि महत्तर का नाम विशेषरूप से ग्रहण किया जाता है। चूर्णि-साहित्य में सर्वाधिक विस्तृत निशीथ-चूर्णि मानी जाती है।

चूर्णि-व्याख्या के अनन्तर आगमों की व्याख्या का संस्कृत टीका युग प्रारम्भ हो जाता है। जैन आगमों की संस्कृत व्याख्याओं का भी आगमिक-साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान रहा है। भारत के इतिहास में गुप्त-युग में संस्कृत भाषा का प्रभाव सर्वतोमुखी हो चुका था। इस युग में व्याकरण, कोष, साहित्य, दर्शन-शास्त्र तथा अलंकार-शास्त्र पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ इसी युग में संस्कृत में लिखे गये थे। उसका प्रभाव जैन-परम्परा पर भी अवश्य ही पड़ा होगा। यही कारण है, कि संस्कृत के प्रभाव की अभिवृद्धि को लक्ष्य में रख कर जैन परम्परा के ज्योतिर्धर आचार्यों ने भी अपने प्राचीनतम साहित्य आगमों पर तथा आगम-भिन्न ग्रन्थों पर भी संस्कृत-टीकाओं के लिखने का शुभ-प्रारम्भ किया होगा ? संस्कृत-टीकाकारों में आचार्य हरिभद्र, आचार्य शीलांक, आचार्य अभयदेव, आचार्य मलयगिरि तथा आचार्य मलधारी हेमचन्द्र अत्यन्त विख्यात तथा लोक-प्रिय रहे हैं।

आगमों की संस्कृत टीकाओं के बाद में आचार्यों ने जनहित की दृष्टि से यह आवश्यक समझा होगा, कि लोक-भाषाओं में भी सरल तथा सुबोध्य आगम-व्याख्याएँ लिखी जायें। तथाभूत व्याख्याओं का प्रयोजन किसी विषय की गहनता में न उतर कर साधारण पाठकों को केवल मूल-सूत्र के अर्थ का बोध कराना था। इस प्रकार की व्याख्या को लोक-भाषा में टब्बा कहा जाता है। टब्बाकारों में स्थानकवासी-परम्परा के प्रसिद्ध आचार्यों में धर्मसिंहजी का नाम विशेषरूप से उल्लेख करने योग्य है। इन्होंने भगवती सूत्र, जीवाभिगम सूत्र तथा प्रज्ञापना सूत्र आदि २७ आगमों पर टब्बा-व्याख्या लिखी, जिसे बालाव-बोध भी कहा जाता है। इन्होंने कहीं-कहीं पर अपनी स्थानकवासी-परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए संस्कृत टीकाओं से भिन्न अर्थ भी किया है, जो स्वाभाविक कहा जाना चाहिए। इसके बाद सम्पादन-युग तथा अनुवाद-युग प्रारम्भ होता है, जिसमें सर्वप्रथम नाम पूज्य अमोलख ऋषि जी महाराज का लिया जाना चाहिये। पंजाब के आचार्य आत्माराम जी महाराज ने अनेक आगमों का सम्पादन, अनुवाद तथा हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की है। स्थानकवासी परम्परा के प्रज्ञास्कन्ध, महान् श्रुतधर, सुप्रसिद्ध हिन्दी भाष्यकार राष्ट्र सन्त उपाध्याय अमर मुनि जी ने सामायिक-सूत्र तथा श्रमण-सूत्र पर हिन्दी में विस्तृत भाष्य लिखकर आगम की व्याख्या परम्परा को अत्यधिक गौरव पद पर पहुँचा दिया है। पूज्य घासीलाल जी महाराज ने प्रायः समस्त आगमों

पर संस्कृत, हिन्दी और गुजराती में विस्तृत व्याख्याएँ लिखी हैं, जो आज सर्वत्र उपलब्ध होती हैं। यह परम्परा अभी चल रही है।

आचार-दशा की व्याख्या

दशाश्रुतस्कन्ध-सूत्र पर अथवा आचारदशा पर न कोई भाष्य उपलब्ध है, न संस्कृत टीका और न टव्वा ही। इस पर निर्युक्ति व्याख्या तथा चूर्णि व्याख्या उपलब्ध है। परन्तु ये दोनों ही अत्यन्त संक्षिप्त हैं। आचारदशा की निर्युक्ति व्याख्या में असमाधि-स्थान, आशातना, चित्त समाधि-स्थान, प्रतिमा तथा गणि-सम्पदा आदि शब्दों की सुन्दर व्याख्याएँ की गई हैं। गणि सम्पदाओं का वर्णन अत्यन्त रोचक, सुन्दर तथा ज्ञानवर्धक कहा जा सकता है।

प्रस्तुत सम्पादन एवं अनुवाद

पण्डित प्रवर, आगमधर मुनिश्री कन्हैयालाल जी 'कमल' ने आचारदशा का सम्पादन एवं मूलस्पर्शी अनुवाद बहुत ही सरस और सुन्दर किया है। श्रमणाचार के अनेक उलझे हुए प्रश्नों पर उन्होंने भाष्य एवं चूर्णि आदि प्राचीन ग्रन्थों के अनुशीलन के आधार पर अपना तटस्थ समाधान-परक चिन्तन भी दिया है। अल्प शब्दों में विवादात्मक प्रश्नों का सम्यक् समाधान करना विवेचन की कुशलता है। मुनिश्रीजी इस कला में सफल हुए हैं। आगम-साहित्य पर वे वर्षों से कुछ-न-कुछ लिखते रहे हैं। परन्तु मेरी दृष्टि में चार छेद सूत्रों पर जो अभी लेखन-कार्य किया है, वह आगम-साहित्य की परम्परा में चिर-स्थायी एवं गौरवपूर्ण कहा जा सकता है। 'कमल' मुनिजी के इस समयोपयोगी सुन्दर सम्पादन की मैं विशेष रूप से प्रशंसा करता हूँ।

☆

अनुक्रम

□□

आयार - सा

आयारदसा

चरिमसयलसुयणाणि-थविर-भद्दबाहु-पणीयं
दसासुयक्खंधसुत्त

पढमा असमाहिट्ठाणादसा

सूत्र १

सुयं मे आउसं ! तेण भगवया एवमक्खायं,

आयारदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा[1]—

१ वीसं असमाहिट्ठाणा ।

२ एगवीसं सवला ।

३ तेतीसं आसायणाओ ।

४ अट्ठविहा गणिसंपया ।

५ दस चित्तसमाहिट्ठाणा ।

६ एगारस उवासगपडिमाओ ।

७ वारस भिक्खुपडिमाओ ।

८ पज्जोसवणाकप्पो ।

९ तीसं मोहणिज्जट्ठाणा ।

१० आयति-(नियाण)-ट्ठाणं ।[2]

---

१ ठाणांग अ० १० सू० ७५५

२ डहरीओ उ इमाओ अज्झयणेसु महईओ अंगेसु ।
छसु नायादीएसुं वत्थविभूसावसाणमिव ॥५॥
डहरी उ इमाओ निज्जूढाओ अणुग्गहट्ठाए ।
थेरेहि तु दसाओ जो दसा जाणओ जीवो ॥६॥
एतेसि दसण्हं अज्झयणाण इमे अत्थाहिगारा भवन्ति । तं जहा—
असमाहि य सबला ऽणासायण गणिगुणा मणसमाही ।
सावग-भिक्खुपडिमा कप्पो मोहो नियाणं च ॥७॥

—दसा० नि० पत्र १

आचारदशा

अन्तिम सकल श्रुतज्ञानी-स्थविर-भद्रबाहु-प्रणीत

दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र

प्रथम असमाधिस्थान दशा

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है—उन निर्वाण-प्राप्त भगवान महावीर ने ऐसा कहा है—

आचारदशाओं के दस अध्ययन कहे हैं। जैसे—

१ वीस असमाधि स्थान।
२ इक्कीस शवल दोष।
३ तेतीस आशातनाएं।
४ आठ प्रकार की गणिसंपदाएं।
५ दस प्रकार के चित्तसमाधिस्थान।
६ ग्यारह प्रकार की उपासक प्रतिमाएं।
७ बारह प्रकार की भिक्षु प्रतिमाएं।
८ पर्युषणा कल्प।
९ तीस प्रकार के मोहनीय स्थान।
१० आयति (निदान) स्थान।

सूत्र २

तत्थ इमा पढमा असमाहिट्ठाणा दसा।
इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहि-ट्ठाणा पण्णत्ता।

इनमें यह प्रथम असमाधिस्थान दशा है।

इस आर्हत प्रवचन में निश्चय से स्थविर भगवन्तों ने वीस असमाधिस्थान कहे हैं।

सूत्र ३

प्र० कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहि-ट्ठाणा पण्णत्ता ?
उ० इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहि-ट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
१ दवदवचारी यावि भवइ।
२ अप्पमज्जियचारी यावि भवइ।

३ दुप्पमज्जियचारी यावि भवइ ।
४ अतिरित्त-सेज्जासणिए यावि भवइ ।
५ रातिणिअ-परिभासी यावि भवइ ।
६ थेरोवघाइए यावि भवइ ।
७ भूओवघाइए यावि भवइ ।
८ संजलणे यावि भवइ ।
६ कोहणे यावि भवइ ।
१० पिट्ठिमंसिए यावि भवइ ।
११ अभिक्खणं अभिक्खणं ओहारइत्ता भवइ ।
१२ णवाणं अहिगरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाइत्ता भवइ ।
१३ पोराणाणं अहिगरणाणं खामिअ-विउसवियाणं पुणोदीरेत्ता भवइ ।
१४ अकाले सज्झायकारए यावि भवइ ।
१५ ससरक्ख-पाणि-पाए यावि भवइ ।
१६ सद्दकरे यावि भवइ ।
१७ झंझकरे (भेदकरे) यावि भवइ ।
१८ कलहकरे यावि भवइ ।
१६ सूरप्पमाण-भोई यावि भवइ ।
२० एसणाए असमाहिए यावि भवइ ।

प्रश्न :—स्थविर भगवन्तों ने वे कौन से वीस असमाधिस्थान कहे हैं ?

उत्तर :—स्थविर भगवन्तों ने वे वीस असमाधिस्थान इस प्रकार कहे हैं । जैसे——

१ द्रुत-द्रुतचारी (अतिशीघ्र गमनादि करने वाला) होना प्रथम असमाधिस्थान है ।
२ अप्रमार्जितचारी होना दूसरा असमाधिस्थान है ।
३ दुःप्रमार्जितचारी होना तीसरा असमाधिस्थान हैं ।
४ अतिरिक्त शय्या-आसन रखना चौथा असमाधिस्थान है ।
५ रात्निक (दीक्षापर्याय-ज्येष्ठ) के सामने परिभाषण करना पांचवां असमाधिस्थान है ।
६ स्थविरों का उपघात करना छठा असमाधिस्थान है ।
७ भूतों-(पृथिवी आदि) का घात करना सातवां असमाधिस्थान है
८ संज्वलन (जलना, आक्रोश करना) आठवां असमाधिस्थान है ।
६ क्रोध करना नवां अममाधिस्थान है ।

१० पृष्ठमांसिक (पीठ पीछे निन्दा करने वाला) होना दशवां असमाधि-स्थान है।

११ वार-वार अवधारणी (निश्चयात्मक) भाषा बोलना ग्यारहवां असमाधि-स्थान है।

१२ अमुत्पन्न (नवीन) अधिकरणों (कलहों) को उत्पन्न करना बारहवां असमाधिस्थान है।

१३ क्षमापन द्वारा उपशान्त पुराने अधिकरणों का फिर से उदीरण करना (उभारना) तेरहवां असमाधिस्थान है।

१४ अकाल में स्वाध्याय करना चौदहवां असमाधिस्थान है।

१५ सचित्तरज से युक्त हस्त-पादवाले व्यक्ति से भिक्षादि ग्रहण करना पन्द्रहवां असमाधिस्थान है।

१६ शब्द करना (अनावश्यक बोलना) सोलहवां असमाधिस्थान है।

१७ झंझा (संघ में भेद उत्पन्न करनेवाला) वचन बोलना सत्रहवां असमाधिस्थान है।

१८ कलह करना अठारहवां असमाधिस्थान है।

१९ सूर्यप्रमाण-भोजी (सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक कुछ न कुछ खाते रहना) उन्नीसवां असमाधिस्थान है।

२० एषणासमिति से असमित (अनेषणीय भक्त-पानादि की) एषणा करना बीसवां असमाधिस्थान है।

सूत्र ४

एते खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहि-ट्ठाणा पण्णत्ता।
त्ति बेमि।

पढमा असमाहिट्ठाणा दसा समत्ता

स्थविर भगवन्तों ने ये ही बीस असमाधिस्थान कहे हैं।

—ऐसा मैं कहता हूं।

प्रथम दशा का सारांश

☐ चित्त की स्वच्छतापूर्वक मोक्षमार्ग में संलग्न होने को समाधि कहते हैं। अर्थात् जिस कार्य के करने से चित्त को शान्ति प्राप्त हो और मोक्षमार्ग में लगकर उसकी प्राप्ति कर सके, वह समाधि कहलाती है। इससे विपरीतप्रवृत्ति को असमाधि कहते है। जिन कारणों से असमाधि उत्पन्न होती हैं वे असमाधि

स्थान कहलाते हैं। अर्थात् इनके सेवन से अपने को, पर को और उभय को इस लोक में और परलोक में असमाधि होती है। इस दशा में ऐसे असमाधिस्थान वीस वतलाये गये हैं; इनके द्वारा चित्त में अशान्ति उत्पन्न होती है। निर्युक्तिकार कहते हैं कि यहां वीस यह पद "नेम्म" अर्थात् आधारमात्र हैं, इसलिए इसप्रकार के अन्य अनेक भी असमाधिस्थान होते हैं, उन्हें भी इन आधारभूत वीस के ही अन्तर्गत जानना चाहिए। चित्तसमाधि के लिए सभी असमाधिस्थानों का परित्याग करना आवश्यक वतलाया गया है।

द्रुत-द्रुतचारी प्रथम असमाधिस्थान हैं। शीघ्रता से दवादव चलने के समान दवादव वोलना, दवादव खाना और दवादव वस्त्र-पात्रादि का प्रतिलेखनादि करना भी इसी के अन्तर्गत है। यह दवादव गमन, भाषण, भोजनादि मन-वचन-काय से चाहे स्वयं करे, अन्य से करावे या अन्य की अनुमोदना करे, सभी कार्य इस प्रथम असमाधिस्थान के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। शीघ्रता-पूर्वक चलने, खाने-पीने और वोलने से आत्मविराधना भी होती है और जीव-घात होने से संयम-विराधना भी होती है। इसे प्रथम स्थान देने का आशय यह है कि पांच समितियों में ईर्यासमिति पहले कही गई है। यह सभी शेष समितियों में प्रधान है अतः इसकी विराधना से सव की विराधना और पालन से सभी का आराधन होता है।

अप्रमार्जितचारी दूसरा असमाधिस्थान है। दिन में या रात्रि में किसी भी स्थान पर रजोहरणादिसे विना प्रमार्जन किये चलना-फिरना यह दूसरा असमाधिस्थान है! यहां पर दिये गये "अपि" शव्द से स्थान (खड़े होना) निषीदन (वैठना) त्वक्वर्तन (शरीर को वार-वार इधर-उधर पलटना) उप-करण वस्त्र पात्रादि को वार-वार उठाना रखना आदि कार्यों में तथा मल-मूत्रादि विसर्जन में अप्रमार्जितचारी होना भी सम्मिलित है।

इसी प्रकार उक्त कार्यों में दुष्प्रमार्जितचारी होना भी तीसरा असमाधि-स्थान है। विना उपयोग के अविधि से, इधर-उधर देखते हुए यद्वा-तद्वा प्रमार्जन करना तीसरा असमाधिस्थान है।

अतिरिक्त शय्यासन रखना चौथा असमाधिस्थान है। जिस पर सोते हैं, उसे शय्या कहते हैं, उसकी लम्वाई शरीर-प्रमाण होती है। आतापना, स्वाध्याय आदि जिस पर वैठकर किया जाता है उसे आसन कहते हैं। इनको प्रमाण से और मात्रा से अधिक रखने पर यथोचित प्रमार्जन और प्रतिलेखन नहीं हो सकने से जीव-विराधना सम्भव है और आत्म-विराधना भी; अतः इसे भी असमाधिस्थान कहा है।

रात्निक-परिभाषी पांचवां असमाधिस्थान है। जो जाति श्रुत एवं दीक्षा पर्याय से बड़े होते हैं, ऐसे आचार्य, उपाध्याय और स्थविरों को रात्निक कहते हैं। अपनी जाति, कुल आदि को बड़ा बताकर अहंकार से उनकी अवहेलना करना, पराभव करना, उन्हें मन्दबुद्धि कहना भी असमाधिस्थान है।

इसीप्रकार स्थविर के घात का विचार करना, उपलक्षण से अन्य किसी भी साधु के घात का विचार करना, प्राणियों के घात का विचार करना, अयतना से प्रवर्तन करते हुए उनकी रक्षा का ध्यान न रखना, संज्वलन—पुनः पुनः क्रोध करना, क्रोधन—एक बार वैरभाव हो जाने पर उसे सदा स्मरण रखना, क्षमा प्रदान नहीं करना, पीठ पीछे चुगली खाना, अवर्णवाद करना, बार-बार निश्चयात्मक भाषा बोलना, संदिग्ध बात को भी "यह ऐसी ही है" ऐसा कहना, संघ में नये-नये झगड़े उत्पन्न करना, पुराने और क्षमापन किये गये कलहों को उभारना, अकाल में स्वाध्याय करना, सचित्तरज से लिप्त हाथ-पैर वाले व्यक्ति के हाथ से भिक्षा लेना, अपने हाथ पैरों को सचितरज से लिप्त रखना, समय-असमय जोर से शब्द करना (बोलना) संघ में भेद करना, कलह करना, दिन भर कुछ न कुछ खाते-पीते रहना, और गोचरी में अनेपणीय वस्तु को ग्रहण करना भी असमाधिस्थान हैं।

प्रथम असमाधिस्थान दशा समाप्त।

□

बीया सबला दसा :

दूसरी शवल दोष दशा

सूत्र १

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं **एगवीसं सबला** पण्णत्ता।

इस आर्हत प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने इक्कीस शवल (दोप) कहे हैं।

सूत्र २

प्र० कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं एगवीसं सवला पण्णत्ता ?

उ० इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं एगवीसं सवला पण्णत्ता, तं जहा—

१ हत्थकम्मं करेमाणे सवले।
२ मेहुणं पडिसेवमाणे सवले।
३ राइ-भोअणं भुंजमाणे सवले।
४ आहाकम्मं भुंजमाणे सवले।
५ रायपिंडं भुंजमाणे सवले।
६ उद्देसियं वा[1] कीयं वा, पामिच्चं वा आच्छिज्जं वा, अणिसिट्ठं वा, आहट्टु दिज्जमाणं वा भुंजमाणे सवले।
७ अभिक्खणं अभिक्खणं पडियाइक्खित्ताणं भुंजमाणे सवले।
८ अंतो छण्हं मासाणं गणाओ गणं संकममाणे सवले।
९ अंतो मासस्स तओ दगलेवे करेमाणे सवले।
१० अंतो मासस्स तओ माइट्ठाणे करेमाणे सवले।

---

१ क्वचित् 'उद्देसियं वा' इति पदं नास्ति।

११ सागारियपिंडं भुंजमाणे सबले ।

१२ आउट्टियाए पाणाइवायं करेमाणे सबले ।

१३ आउट्टियाए मुसावायं वदमाणे सबले ।

१४ आउट्टियाए अदिण्णादाणं गिण्हमाणे सबले ।

१५ आउट्टियाए अणंतरहिआए पुढवीए
ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणे सबले ।

१६ एवं ससणिद्धाए पुढवीए ।
एवं ससरक्खाए पुढवीए ।

१७ आउट्टियाए चित्तमंताए सिलाए, चित्तमंताए लेलुए,
कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए,
स-अंडे, स-पाणे, स-बीए, स-हरिए, स-उस्से, स-उदगे, स-उत्तिंगे,
पणग-दग मट्टीए, मक्कडा-संताणए
तहप्पगारं ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएमाणे सबले ।

१८ आउट्टियाए मूलभोयणं वा, कंद-भोयणं वा, खंध-भोयणं वा, तया-भोयणं वा, पवाल-भोयणं वा, पत्तभोयणं वा, पुप्फ-भोयणं वा, फल-भोयणं वा, बीय-भोयणं वा, हरिय-भोयणं वा भुंजमाणे सबले ।

१९ अंतो संवच्छरस्स दस दग-लेवे करेमाणे सबले ।

२० अंतो संवच्छरस्स दस माइ-ट्ठाणाइं करेमाणे सबले ।

२१ आउट्टियाए सीतोदय-वियड-वग्घारिय-हत्थेण वा मत्तेण वा, दव्वीए वा, भायणेण वा, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सबले ।

प्रश्न: स्थविर भगवन्तों ने वे इक्कीस शबल (दोष) कौन से कहे हैं—

उत्तर:—स्थविर भगवन्तों ने वे इक्कीस शबल इस प्रकार कहे हैं। जैसे—

१ हस्तकर्म करने वाला शबल दोष-युक्त है ।
२ मैथुन प्रतिसेवन करने वाला शबल दोष-युक्त है ।
३ रात्रि-भोजन करने वाला शबल दोषयुक्त है ।
४ आधाकर्मिक आहार खाने वाला शबल दोषयुक्त है ।
५ राजपिंड को खाने वाला शबल दोषयुक्त है ।
६ औद्देशिक (साधु के उद्देश्य से निर्मित) या क्रीत (साधु के लिए मूल्य से खरीदा हुआ) या प्रामित्यक (उधार लाया हुआ) या आच्छिन्न

(निर्वल से छीनकर लाया हुआ) या अनिसृष्ट (विना आज्ञा के लाया हुआ) या आहृत्य दीयमान (साधु के स्थान पर लाकर के दिया हुआ) आहार को खाने वाला शवल दोपयुक्त है।

७ पुनः पुनः प्रत्याख्यान करके उसे (अशन-पानादि को) खाने वाला शवल दोपयुक्त है।

८ छह मास के भीतर ही एक गण से दूसरे गण में संक्रमण (गमन, करने वाला शवल दोपयुक्त है।

९ एक मास के भीतर तीन वार (नदी आदि को पार करते हुए) उदक-लेप (जल-संस्पर्श) करने वाला शवल दोपयुक्त है।

१० एक मास के भीतर तीन वार मायास्थान (छल-कपट) करने वाला शवल दोपयुक्त है।

११ सागारिक (स्थान-दाता, शय्यातर) के पिंड (आहारादि) को खानेवाला शवल दोपयुक्त है।

१२ जान-वूझ कर प्राणातिपात (जीव-घात) करने वाला शवल दोप-युक्त है।

१३ जान-वूझ कर मृपावाद (असत्य) बोलने वाला शवल दोपयुक्त है।

१४ जान-वूझ कर अदत्त वस्तु को ग्रहण करनेवाला शवल दोपयुक्त है।

१५ जान-वूझ कर अनन्तर्हित (सचित्त) पृथिवी पर स्थान (कायोत्सर्ग) या नैपेधिक (अवस्थान और शयन, स्वाध्याय आदि) करने वाला शवल दोपयुक्त है।

१६ इसी प्रकार (जानकर) सस्निग्ध (कर्दम-युक्त-कीचड़वाली) पृथ्वी पर और सरजस्क (सचित्त रज-धूलि से युक्त) पृथ्वी पर स्थान, अवस्थान, शयन एवं स्वाध्याय आदि करने वाला शवल दोपयुक्त है।

१७ इसी प्रकार जानकर सचित्त शिला पर, सचित्त पत्थर के ढेले पर, घुने हुए काठ पर, या जीव-युक्त काठपर, तथा अण्ड-युक्त द्वीन्द्रियादि जीव-युक्त, वीज-युक्त, हरित तृणादि युक्त, ओस-युक्त, जल-युक्त, पिपीलिका-नगर युक्त, पनक (शेवाल) युक्त जल और मिट्टी पर, मकड़ी के जाले युक्त स्थान पर, तथा इसी प्रकार जहाँ जीव-विराधना की सम्भावना हो ऐसे स्थान पर कायोत्सर्ग, आसन, शयन और स्वाध्याय करने वाला शवल दोप-युक्त है।

१८ जानकर के मूल—(मूली-गाजर आदि का) भोजन, कन्द—(उत्पल-नाल, विदारीकन्द आदि का) भोजन, स्कन्ध—(भूमि पर प्रस्फुटित शाखादि का) भोजन, त्वक् —(छाल) भोजन, प्रवाल – (नवीन पत्ते कोंपलका) भोजन, पत्र—(ताम्बूल, वल्ली पत्रादिका) भोजन, बीज—गेहूँ चना आदि सचित्त का) भोजन, और हरित—(दूर्वा आदि का) भोजन करने वाला शबल दोपयुक्त है ।

१९ एक संवत्सर (वर्ष) के भीतर दशवार उदक-लेप लगाने वाला शबल दोपयुक्त है ।

२० एक संवत्सर के भीतर दश वार मायास्थान करने वाला शबल दोपयुक्त है ।

२१ जान करके शीत-उदक से गीले हाथ से, या पात्र से, या दर्वी (कड़छी) से, या भाजन से, अशन, पान, खादिम या स्वादिम आहार को ग्रहण कर खाने वाला शबल दोषयुक्त है ।

सूत्र ३

एते खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं एगवीसं सबला पण्णत्ता ।

—त्ति बेमि ।

ये सब ही निश्चय से स्थविर भगवन्तों ने इक्कीस शबल कहे हैं ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

बीया सबला दसा समत्ता ।

द्वितीय दशा का सारांश

☐ शबल का अर्थ कर्बुर या चितकबरा होता है । उत्तम श्वेत वस्त्र पर काले धब्बे पड़ने से जैसे वह चितकबरा कहलाने लगता है, उसी प्रकार निर्मल संयम को धारण करने वाला जब उक्त इक्कीस प्रकार के दोपों को करता है, तब उसका संयम भी शबल हो जाता है, ऐसे शबल चारित्र के धारक साधु को भी शबल या शबलचारी कहा जाता है । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि स्वीकृत व्रत मे जो दोप लगते हैं, उनको आचार्यों ने अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार और

अनाचार इन भेदों में विभाजित किया है। जैसे किसी व्यक्ति ने साधु को अपने घर भोजन के लिए निमंत्रित किया, उस निमंत्रण को स्वीकार करना अतिक्रम दोष है। भोजन के लिए जाना व्यतिक्रम दोष है। पात्रादि में भोजन ग्रहण करना अतिचार दोष है और उस भोजन को खा लेना अनाचार दोष है। उक्त चार दोषों में से अनाचार दोष के लगने पर तो व्रतका सर्वनाश ही हो जाता है, अतः मूल गुणादि में आदि के अतिक्रमादि तीन दोष लगने तक ही 'शवल' जानना चाहिए। जैसा कि कहा है—

मूलगुणेषु आदिमेषु भंगेषु शवलो भवति, चतुर्थभंगे सर्वभंगः।

शवल दोष का आचरण करने वाला साधु शवलाचरणी कहलाता है। उसे ही सूत्र में 'शवल' कहा गया है। अतिक्रम, व्यतिक्रम आदि के द्वारा व्रत का जैसा अल्प या अधिक भंग होता है, उसके अनुसार ही अल्प या अधिक प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है। सर्व पापों का यावज्जीवन के लिए परित्याग कर देने पर भी चारित्र मोहनीय कर्म के तीव्र उदय से साधु के भी जब कभी किसी न किसी व्रत में उक्त इक्कीस प्रकार के शवल दोषों में से किसी न किसी दोष का लगना सम्भव है, क्योंकि **"मध्ये मध्ये हि चापल्यमामोहादपि योगिनाम्"** अर्थात् जब तक मोहकर्म विद्यमान है, तब तक बड़े-बड़े योगियों के भी व्रत-पालन में चंचलता आती रहती है।

असमाधिस्थान के समान शवल दोषों की संख्या भी बहुत है, उन सबका भी इन ही इक्कीस भेदों में यथासम्भव अन्तर्भाव जानना चाहिए।

दूसरी शवलदोष-दशा समाप्त।

□

२५ सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स "इति एवं" वत्ता
भवइ आसायणा सेहस्स ।

२६ सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स "नो सुमरसी' ति वत्ता,
भवइ आसायणा सेहस्स ।

२७ सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स णो सुमणसे,
भवइ आसायणा सेहस्स ।

२८ सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता,
भवइ आसायणा सेहस्स ।

२९ सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स कहं आच्छिंदित्ता,
भवइ आसायणा सेहस्स ।

३० सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स तीसे परिसाए अणुट्ठियाए अभिन्नाए अवुच्छिन्नाए, अव्वोगडाए दोच्चंपि तच्चंपि तमेव कहं कहित्ता,
भवइ आसायणा सेहस्स ।

३१ सेहे रायणियस्स सिज्जा-संथारगं पाएणं संघट्टित्ता हत्थेण अणणुण्ण-
वित्ता गच्छइ, भवइ आसायणा सेहस्स ।

३२ सेहे रायणियस्स सिज्जा-संथारए चिट्ठित्ता वा, निसीइत्ता वा, तुय-
ट्टित्ता वा, भवइ आसायणा सेहस्स ।

३३ सेहे रायणियस्स उच्चासणंसि वा समासणंसि वा चिट्ठित्ता वा,
निसीइत्ता वा, तुयट्टित्ता वा, भवइ आसायणा सेहस्स ।

प्रश्न:—उन स्थविर भगवन्तों ने वे कौन सी तेतीस आशातनाएं कही हैं ?

उत्तर:—उन स्थविर भगवन्तों ने ये तेतीस आशातनाएं कही हैं । जैसे—

१ शैक्ष (अल्प दीक्षापर्यायवाला) रात्निक साधु के आगे चले तो उसे आशातना दोष लगता है ।

२ शैक्ष, रात्निक साधु के सपक्ष (समश्रेणी-बराबरी में) चले तो उसे आशा-
तना दोष लगता है ।

३ शैक्ष, रात्निक साधु के आसन्न (अति समीप) होकर चले तो उसे आशातना दोष लगता है ।

४ शैक्ष, रात्निक साधु के आगे खड़ा हो तो उसे आशातना दोप लगता है।

५ शैक्ष, रात्निक साधु के सपक्ष खड़ा हो तो उसे आशातना दोप लगता है।

६ शैक्ष, रात्निक साधु के आसन्न खड़ा हो तो आशातना दोप लगता है।

७ शैक्ष, रात्निक साधु के आगे वैठे तो उसे आशातना दोप लगता है।

८ शैक्ष, रात्निक साधु के सपक्ष वैठे तो उसे आशातना दोप लगता है।

९ शैक्ष, रात्निक साधु के आसन्न वैठे तो उसे आशातना दोप लगता है।

१० शैक्ष, रात्निक साधु के साथ बाहर विचारभूमि (मलोत्सर्ग-स्थान) पर गया हुआ हो (कारणवशात् दोनों एक ही पात्र में जल ले गये हों) ऐसी दशा में यदि शैक्ष रात्निक से पहिले आचमन (शौच-शुद्धि) करे तो आशातना दोप लगता है।

११ शैक्ष, रात्निक के साथ वाहिर विचारभूमि या विहारभूमि (स्वाध्याय-स्थान) पर जावे और वहां शैक्ष रात्निक से पहिले आलोचना करे तो उसे आशातना दोप लगता है।

१२ कोई व्यक्ति रात्निक के पास वार्तालाप के लिए आये, यदि शैक्ष उससे पहले ही वार्तालाप करने लगे तो उसे आशातना दोप लगता है।

१३ रात्रि में या विकाल (सन्ध्या-समय) में रात्निक साधु शैक्ष को सम्वोधन करके कहे—(पूछे—) हे आर्य ! कौन-कौन सो रहे हैं और कौन-कौन जाग रहे हैं? उस समय जागता हुआ भी शैक्ष यदि रात्निक के वचनों को अनसुना करके उत्तर न दे तो उसे आशातना दोप लगता है।

१४ शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को (गृहस्थ के घर से) लाकर उसकी आलोचना पहिले किसी अन्य शैक्ष के पास करे और पीछे रात्निक के समीप करे तो उसे आशातना दोप लगता है।

१५ शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को (गृहस्थ के घर से) लाकर पहिले किसी अन्य शैक्ष को दिखावे और पीछे रात्निक को दिखलावे तो उसे आशातना दोप लगता है।

१६ शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को उपाश्रय में लाकर पहिले अन्य शैक्ष को (भोजनार्थ) आमंत्रित करे और पीछे रात्निक को आमंत्रित करे तो उसे आशातना दोप लगता है।

१७ शैक्ष, यदि रात्निक साधु के साथ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को (उपाश्रय में) लाकर रात्निक से विना पूछे जिस-जिस साधु को देना चाहता है जल्दी-जल्दी अधिक-अधिक परिमाण में देवें तो उसे आशातना दोप लगता है।

१८ शैक्ष, अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को लाकर रात्निक साधु के साथ आहार करता हुआ यदि वहां वह शैक्ष प्रचुर मात्रा में विविध प्रकार के शाक, श्रेष्ठ ताजे, रसदार, मनोज्ञ, मनोभिलषित (खीर, रबड़ी, हलुआ आदि) स्निग्ध और नमकीन पापड़, आदि रूक्ष आहार करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

१९ रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष रात्निक की बात को नहीं सुनता है (अनसुनी कर चुप रह जाता है) तो उसे आशातना दोष लगता है।

२० रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष अपने स्थान पर ही बैठा हुआ उनकी बात को सुने और सन्मुख उपस्थित न हो तो आशातना दोष लगता है।

२१ रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष 'क्या कहते हो' ऐसा कहता है तो उसे आशातना दोष लगता है।

२२ शैक्ष, रात्निक को 'तू' या 'तुम' कहे तो उसे आशातना दोष लगता है।

२३ शैक्ष, रात्निक के सन्मुख अनर्गल प्रलाप करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

२४ शैक्ष, रात्निक को उसी के द्वारा कहे गये वचनों से प्रतिभाषण करे, (तिरस्कार पूर्ण उत्तर दे) तो उसे आशातना दोष लगता है।

२५ शैक्ष, रात्निक के कथा कहते समय कहे कि 'यह ऐसा कहिये' तो उसे आशातना दोष लगता है।

२६ शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए 'आप भूलते हैं, आपको स्मरण नहीं है', कहता है तो उसे आशातना दोष लगता है।

२७ शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि सु-मनस न रहे (दुर्भाव प्रकट करे) तो उसे आशातना दोष लगता है।

२८ शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि (किसी बहाने से) परिषद् (सभा) को विसर्जन करने का आग्रह करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

२९ शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि कथा में बाधा उपस्थित करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

३० शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए उस परिषद् के अनुत्थित (नहीं उठने तक) अभिन्न, अच्छिन्न (छिन्न-भिन्न नहीं होने तक) और अव्याकृत (नहीं बिखरने तक) विद्यमान रहते हुए यदि उसी कथा को दूसरी बार और तीसरी बार भी कहता है तो उसे आशातना दोष लगता है।

३१ शैक्ष, यदि रात्निक साधु के शय्या-संस्तारक का (असावधानी से) पैर से स्पर्श हो जाने पर हाथ जोड़कर विना क्षमा-याचना किये चला जाय तो उसे आशातना दोष लगता है।

३२ शैक्ष, रात्निक के शय्या-संस्तारक पर खड़ा होवे, बैठे या लेटे तो उसे आशातना दोष लगता है।

३३ शैक्ष, रात्निक से ऊंचे या समान आसन पर, खड़ा हो या लेटें तो उसे आशातना दोष लगता है।

सूत्र ३—

एयाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ।

—त्ति बेमि।

स्थविर भगवन्तों ने निश्चय से ये पूर्वोक्त तेतीस आशातनाएं कहीं हैं।

—ऐसा मैं कहता हूं।

इति तइया आसायणा दसा समत्ता।

तीसरी दशा का सारांश

☐ आशातना का अर्थ है—विपरीत प्रवर्तन, अपमान या तिरस्कार। इस शब्द की निरुक्ति की गई है—**'ज्ञान-दर्शनं शातयति खण्डयति तनुतां नयतीत्याशातना'** अर्थात् जो ज्ञान और दर्शन का खण्डन करे, उनको लघु करे, उसे आशातना कहते हैं। शास्त्रों में अनेक आशातनाएं बतलाई गई है। उनमें से यहां पर केवल वे ही आशातनाएं कही गई हैं, जिनसे रत्नाधिक का अधिक अविनय अवज्ञा या तिरस्कार संभव है। रत्नाधिक शब्द का अर्थ है—रत्नों से—ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप गुण-मणियों से जो बड़ा है, दीक्षा में जो बड़ा है, ऐसा साधु। इस पद में आचार्य-उपाध्याय आदि सभी का समावेश है। शैक्ष शब्द का अर्थ शिक्षा-शील शिष्य होता है। पर प्रकृत में जो दीक्षा में छोटा है, उसे शैक्ष कहा गया है। दोनों शब्द परस्पर सापेक्ष हैं। शैक्ष का कर्तव्य है कि अपने दैनिक व्यवहार में रत्नाधिक का सर्व प्रकार से विनय करे। उसे चलते समय रत्नाधिक के न आगे चलना चाहिए, न बराबर चलना चाहिए और न बिलकुल समीप ही चलना चाहिए। इसी प्रकार खड़े होने और बैठते समय भी ध्यान रखना आवश्यक है, अन्यथा वह आशातना का भागी होता है। नीहार के समय यदि कारण-वश एक ही पात्र में जल ले जाया गया हो तो रत्नाधिक के पश्चात् ही

आचमन (शुद्धि) करना चाहिए। रत्नाधिक से पूछे गये प्रश्न का उत्तर भी तत्परता पूर्वक विनय के साथ देना चाहिए। भोजन के समय भी रत्नाधिक का निमंत्रण पहिले करके पीछे और अन्य साधुओं को भोजनार्थ बुलाना चाहिए। यदि कदाचित् एक ही पात्र में भोजन का अवसर आवे तो रस लोलुप होकर शैक्ष को उत्तम भोजन एवं व्यंजन नही खाना चाहिए। रत्नाधिक जब कभी बुलायें, या किसी बात को पूछें तो अपने आसन से उठकर विनयपूर्वक ही समुचित उत्तर देना चाहिए। किसी भी रत्नाधिक से 'तू', तुम आदि शब्द नहीं बोलना चाहिए। इसके विपरीत करने वाला शैक्ष आशातना दोष का भागी होता है।

रत्नाधिक और रात्निक ये दोनों ही शब्द एकार्थक हैं।

तीसरी आशातना दशा समाप्त।

□

चउत्थी गणिसंपया दसा :

चौथी गणिसम्पदा दशा

सूत्र १

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणि-संपया पण्णत्ता ।

इस आर्हत प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने आठ प्रकार की गणि-सम्पदा कही है ?

सूत्र २

प्र०—कयरा खलु ता थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणि-संपया पण्णत्ता ?

उ०—इमा खलु ता थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणि-संपया पण्णत्ता; तं जहा—

१ आयार-संपया — २ सुय-संपया

३ सरीर-संपया — ४ वयण-संपया

५ वायणा-संपया — ६ मइ-संपया

७ पओग-संपया — ८ संगह-परिण्णाणामं अट्ठमा ।

प्रश्न—हे भगवन् ! वे कौन-सी आठ प्रकार की गणि-सम्पदा कही हैं ?

उत्तर वे ये आठ प्रकार की गणिसम्पदा कही हैं । जैसे—

१ आचारसम्पदा, २ श्रुतसम्पदा, ३ शरीरसम्पदा, ४ वचनसम्पदा, ५ वाचनासम्पदा, ६ मतिसम्पदा, ७ प्रयोगसम्पदा, ८ संग्रहपरिज्ञासम्पदा ।

सूत्र ३

प्र०—से किं तं आयार-संपया ?

उ०—आयार-संपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ संजम-धुव-जोग-जुत्ते यावि भवइ, — २ असंपग्गहिय-अप्पा,

३ अणियत-वित्ती, — ४ वुड्ढ-सीले यावि भवइ ।

से तं आयार-संपया । (१)

प्रश्न—भगवन् ! वह आचारसम्पदा क्या है ?

उत्तर—आचारसम्पदा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ संयम-क्रियाओं में सदा उपयुक्त रहना।

२ असंप्रगृहीतात्मा – अहंकार-रहित होना।

३ अनियतवृत्ति—एक स्थान पर स्थिर होकर नही रहना।

४ वृद्धशील—वृद्धों के समान गम्भीर स्वभाववाला होन ।

यह चार प्रकार की आचारसम्पदा है।

सूत्र ४

प्र०—से किं तं सुय-संपया ?

उ०—सुय-संपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ बहुस्सुए यावि भवइ, २ परिचिय-सुए यावि भवइ,

३ विचित्त-सुए यावि भवइ, ४ घोस-विसुद्धिकारए यावि भवइ।

से तं सुय-संपया। (२)

प्रश्न—भगवन् ! श्रुतसम्पदा क्या है ?

उत्तर—श्रुतसम्पदा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ बहुश्रुतता—अनेकशास्त्रों का ज्ञाता होना।

२ परिचितश्रुतता – सूत्रार्थ मे भली भाँति परिचित होना।

३ विचित्रश्रुतता (स्व-समय और पर-समय का ज्ञाता) होना।

४ घोपविशुद्धिकारकता (शुद्ध उच्चारण करने वाला) होना।

यह चार प्रकार की श्रुतसम्पदा है।

सूत्र ५

प्र०—से किं तं सरीर-संपया ?

उ० सरीर-संपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ आरोह-परिणाह-संपन्ने यावि भवइ, २ अणोतप्प-सरीरे यावि भवइ।

३ थिरसंघयणे यावि भवइ, ४ बहुपडिपुण्णिंदिए यावि भवइ।

से तं सरीर-सपया। (३)

प्रश्न—भगवन् ! शरीरसम्पदा क्या है ?

उत्तर—शरीर सम्पदा चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१ आरोह-परिणाह-सम्पन्नता शरीर की लम्बाई-चौड़ाई का उचित प्रमाण होना।

२ अनुत्रपशरीरता—लज्जास्पद शरीर वाला न होना।
३ स्थिरसंहननता शरीर-संहनन सुदृढ़ होना।
४ वहुप्रतिपूर्णेन्द्रियता - सर्व इन्द्रियों का परिपूर्ण होना।
यह चार प्रकार की शरीर सम्पदा है।

सूत्र ६

प्र०—से किं तं वयण-संपया ?
उ०—वयण-संपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ आदेय-वयणे[1] यावि भवइ, २ महुर-वयणे यावि भवइ,
३ अणिस्सिय-वयणे यावि भवइ, ४ असंदिद्धवयणे[2] यावि भवइ।
से तं वयण-संपया। (४)

प्रश्न—भगवन् ! वचन-सम्पदा क्या है ?
उत्तर— वचन-सम्पदा चार प्रकार की कही गई है। जैसे —
१ आदेयवचनवाला होना। (जिसके वचन सर्वजन-आदरणीय हों)
२ मधुवर-वचन वाला होना।
३ अनिश्रित (राग-द्वेष-रहित) वचनवाला होना।
४ असंदिग्ध (सन्देह-रहित) वचनवाला होना।
यह चार प्रकार की वचन-सम्पदा है।

सूत्र ७

प्र०—से किं तं वायणा-संपया ?
उ०—वायणा-संपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ विजयं (विचयं) उद्दिसइ, २ विजयं (विचयं) वाएइ,
३ परिनिव्वावियं वाएइ, ४ अत्थनिज्जावए यावि भवइ।
से तं वायणा संपया (५)

प्रश्न—भगवन् ! वाचना-सम्पदा क्या है ?
उत्तर— वाचनासम्पदा चार प्रकार की कही गई है। जैसे —
१ विचय-उद्देशी—शिष्य की योग्यता का निश्चय करने वाला होना।

---

१ आदिज्ज०। २ फुडवयणे।

२ विचय-वाचक—विचारपूर्वक अध्यापन करनेवाला होना ।
३ परिनिर्वाप्य-वाचक—योग्यतानुसार उपयुक्त पढ़ाने वाला होना ।
४ अर्थनिर्यापक—अर्थ-संगति-पूर्वक नय-प्रमाण से अध्यापन कराने वाला होना ।
यह चार प्रकार की वाचना-सम्पदा है ।

सूत्र ८

प्र०—से किं तं मइ-संपया ?
उ०—मइ-संपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ उग्गह-मइ-संपया, २ ईहा-मइ-संपया
३ अवाय-मइ-संपया ४ धारणा-मइ-संपया ।

प्रश्न—भगवन् ! मति-सम्पदा क्या है ?
उत्तर—मतिसम्पदा चार प्रकार की कही गई है । जैसे—
१ अवग्रह-मतिसम्पदा—सामान्य रूप से अर्थ को जानना ।
२ ईहा-मतिसम्पदा—सामान्य रूप से जाने हुए अर्थ को विशेष रूप से जानने की इच्छा होना ।
३ अवाय-मतिसम्पदा—ईहित वस्तु का विशेष रूप से निश्चय करना ।
४ धारणा-मतिसम्पदा—ज्ञात वस्तु का कालान्तर में स्मरण रखना ।

सूत्र ९

प्र०—से किं तं उग्गह-मइ-संपया ?
उ०—उग्गह-मइ-संपया छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ खिप्पं उगिण्हेइ, २ बहुं उगिण्हेइ,
३ बहुविहं उगिण्हेइ, ४ धुवं उगिण्हेइ,
५ अणिस्सियं उगिण्हेइ, ६ असंदिद्धं उगिण्हेइ ।
से तं उग्गह-मइ-संपया ।

प्रश्न—भगवन् ! अवग्रह-मतिसम्पदा क्या है ?
उत्तर—अवग्रह-मतिसम्पदा छह प्रकार की कही गई । जैसे—
१ क्षिप्र-अवग्रहणता—प्रश्न आदि को शीघ्र ग्रहण करना ।
२ बहु-अवग्रहणता—बहुत अर्थों का ग्रहण करना ।

३ वहुविध-अवग्रहणता—अनेक प्रकार के वहुत अर्थों को ग्रहण करना।
४ ध्रुव-अवग्रहणता—निश्चितरूप से अर्थ को ग्रहण करना।
५ अनिसृत-अवग्रहणता—अनिःसृत अर्थ को प्रतिभा से ग्रहण करना।
६ असंदिग्ध-अवग्रहणता—सन्देह-रहित होकर अर्थ को ग्रहण करना।

सूत्र १०

एवं ईहा-मई वि।

इसी प्रकार ईहा-मतिसम्पदा भी छह प्रकार की होती है।

सूत्र ११

एवं अवाय-मई वि।

इसी प्रकार अवाय-मतिसम्पदा भी छह प्रकार की होती है।

सूत्र १२

प्र०—से किं तं धारणा-मइसंपया?

उ०—धारणा-मइसंपया छव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

१ वहुं धरेइ, २ वहुविहं धरेइ,
३ पोराणं धरेइ, ४ दुद्धरं धरेइ,
५ अणिस्सियं धरेइ, ६ असंदिद्धं धरेइ।

से तं धारणा-मइ संपया।
से तं मइ-संपया। (६)

प्रश्न—भगवन्! धारणा-मतिसम्पदा क्या है?
उत्तर—धारणामतिसम्पदा छह प्रकार की कही गई है। जैसे—
१ वहु-धारणता—वहुत अर्थों को धारण करना।
२ वहुविध-धारणता—अनेक प्रकार के वहुत अर्थों को धारण करना।
३ पुरातन-धारणता—पुरानी वात को धारण (स्मरण) करना।
४ दुर्धर-धारणता—कठिन से कठिन वात को धारण करना।
५ अनिःसृत-धारणता—अनुक्त अर्थ को निश्चित रूप से प्रतिभा द्वारा धारण करना।
६ असंदिग्ध-धारणता—ज्ञात अर्थ को सन्देह-रहित होकर धारण करना।
यह मतिसम्पदा है।

सूत्र १३

प्र०—से किं तं पओग-संपया ?

उ०—पओग-संपया चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—

१ आयं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ,

२ परिसं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ,

३ खेत्तं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ,

४ वत्थुं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ ।

से तं पओग-संपया । (७)

प्रश्न—भगवन् ! प्रयोग-सम्पदा क्या है ?

उत्तर—प्रयोगसम्पदा चार प्रकार की कही गई । जैसे—

१ अपनी शक्ति को जानकर वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) का प्रयोग करना ।

२ परिषद् (सभा) के भावों को जानकर वाद-विवाद का प्रयोग करना ।

३ क्षेत्र को जानकर वाद-विवाद का प्रयोग करना ।

४ वस्तु के विषय को जानकर पुरुषविशेष के साथ वाद-विवाद करना ।
यह प्रयोगसम्पदा है ।

सूत्र १४

प्र०—से किं तं संगह-परिण्णा णामं संपया ?

उ०—संगह-परिण्णा णामं संपया चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—

१ बहुजण-पाउग्गयाए वासावासेसु खेत्तं पडिलेहित्ता भवइ,

२ बहुजण-पाउग्गयाए पाडिहारिय-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं
उग्गिण्हित्ता भवइ,

३ कालेणं कालं समाणइत्ता भवइ,

४ अहागुरु संपूएत्ता भवइ ।

से तं संगह-परिण्णा नाम संपया । (८)

प्रश्न—भगवन् ! संग्रहपरिज्ञा नामक सम्पदा क्या है ।

उत्तर—संग्रहपरिज्ञा नामक सम्पदा चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१ वर्षावास में अनेक मुनिजनों के रहने के योग्य क्षेत्र का प्रतिलेखन
करना (उचित स्थान का देखना) ।

२ अनेक मुनिजनों के लिए प्रातिहारिक (वापिस सौंपने की कहकर) पीठ-
फलक, शय्या और संस्तारक का ग्रहण करना ।

३ यथाकाल यथोचित कार्य को करना और कराना ।

४ गुरुजनों का यथायोग्य पूजा-सत्कार करना ।

यह संग्रहपरिज्ञा नामक सम्पदा है ।

विशेषार्थ—इस संग्रहपरिज्ञा सम्पदा को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के क्रमानुसार न कहकर द्रव्य से पूर्व क्षेत्र-सम्पदा का निरूपण करने का कारण यह है कि क्षेत्र प्रतिलेखन के पश्चात् ही पीठ-फलक आदि द्रव्यों का लाना उचित है ।

सूत्र १५

आयरिओ अंतेवासी इमाए चउव्विहाए विणय-पडिवत्तीए विणइत्ता भवइ निरणित्तं गच्छइ, तं जहा—

१ आयार-विणएणं, **२ सुय-विणएणं,**
३ विक्खेवणा-विणएणं, **४ दोस-निग्घायण-विणएणं ।**

आचार्य अपने शिष्यों को यह चार प्रकार की विनय-प्रतिपत्ति सिखाकर के अपने ऋण से उऋण हो जाता है । जैसे—आचारविनय, श्रुतविनय, विक्षेपणाविनय और दोषनिर्घातविनय ।

सूत्र १६

प्र०—से किं तं आयार-विणए ?

उ०—आयार-विणए चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—

१ संयम-सामायारी यावि भवइ,

२ तव-सामायारी यावि भवइ,

३ गण-सामायारी यावि भवइ,

४ एकल्ल-विहार-सामायारी यावि भवइ ।

से तं आयार-विणए । (१)

प्रश्न—भगवन् ! वह आचारविनय क्या है ?

उत्तर आचारविनय चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१ संयमसमाचारी—संयम के भेद-प्रभेदों का ज्ञान कराके आचारण कराना ।

२ तपःसमाचारी—तपके भेद-प्रभेदों का ज्ञान कराके आचरण कराना ।

३ गणसमाचारी—साधु-संघ की सारण-वारणादि से रक्षा करना, रोगी दुर्बल साधुओं की यथोचित व्यवस्था करना, अन्य गण के साथ यथायोग्य व्यवहार करना और कराना ।

४ एकाकीविहार समाचारी—किस समय किस अवस्था में अकेले विहार करना चाहिए, इस बात का ज्ञान कराना।

यह आचार विनय है।

सूत्र १७

प्र०—से किं तं सुय-विणए ?

उ०—सुय-विणए चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—

१ सुत्तं वाएइ, २ अत्थं वाएइ,

३ हियं वाएइ, ४ निस्सेसं वाएइ।

से तं सुय-विणए। (२)

प्रश्न—भगवन् ! श्रुतविनय क्या है ?

उत्तर—श्रुतविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ सूत्रवाचना—मूल सूत्रों का पढ़ाना।

२ अर्थवाचना—सूत्रों के अर्थ का पढ़ाना।

३ हितवाचना—शिष्य के हित का उपदेश देना।

४ निःशेपवाचना—प्रमाण, नय, निक्षेप, संहिता, पदच्छेद, पदार्थ, पद-विग्रह, चालना (शंका) प्रसिद्धि (समाधान) आदि के द्वारा सूत्रार्थ का यथाविधि समग्र अध्यापन करना-कराना।

यह श्रुतविनय है।

सूत्र १८

प्र०—से किं तं विक्खेवणा-विणए ?

उ०—विक्खेवणा-विणए चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—

१ अदिट्ठ-धम्मं दिट्ठ-पुव्वगत्ताए विणयइत्ता भवइ,

२ दिट्ठपुव्वगं साहम्मियत्ताए विणयइत्ता भवइ,

३ चुय-धम्माओ धम्मे ठावइत्ता भवइ,

४ तस्सेव धम्मस्स हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेसाए, अणुगामियत्ताए अब्भुट्ठेत्ता भवइ।

से तं विक्खेवणा-विणए। (३)

प्रश्न—भगवन् ! विक्षेपणाविनय क्या है ?

उत्तर—विक्षेपणाविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अदृष्टधर्मा को अर्थात् जिस शिष्य ने सम्यक्त्वरूपधर्म को नहीं जाना है, उसे उससे अवगत कराके सम्यक्त्वी बनाना।

२ दृष्टधर्मा शिष्य को सार्धमिकता-विनीत (विनयसंयुक्त) करना।

३ धर्म से च्युत होने वाले शिष्य को धर्म में स्थापित करना।

४ उसी शिष्य के धर्म के हित के लिए, सुख के लिए, सामर्थ्य के लिए, मोक्ष के लिए और अनुगामिकता अर्थात् भवान्तर में भी धर्मादिकी प्राप्ति के किए अभ्युद्यत रहना।

यह विक्षेपणाविनय है।

सूत्र १९

प्र०—से किं तं दोस-निग्घायणा-विणए ?

उ०—दोस-निग्घायणा-विणए चउव्विहे पण्णत्ते।[1] तं जहा—

१ कुद्धस्स कोहं विणएत्ता भवइ,

२ दुट्ठस्स दोसं णिगिण्हित्ता भवइ,

३ कंखियस्स कंखं छिदित्ता भवइ,

४ आय-सुपणिहिए यावि भवइ।

से तं दोस-निग्घायणा-विणए। (४)

प्रश्न—भगवन् ! दोषनिर्घातनाविनय क्या है ?

उत्तर—दोषनिर्घातनाविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ क्रुद्ध व्यक्ति के क्रोध को दूर करना।

२ दुष्ट व्यक्ति के दोष को दूर करना।

३ आकांक्षा वाले व्यक्ति की आकांक्षा का निवारण करना।

४ आत्मा को सुप्रणिहित रखना अर्थात् शिष्यों को सुमार्ग पर लगाये रखना।

यह दोषनिर्घातना विनय है।

सूत्र २०

तस्स णं एवं गुणजाइयस्स[1] अंतेवासिस्स इमा

चउव्विहा विणय-पडिवत्ती भवइ। तं जहा—

---

1 आ० धा० प्रत्योः 'तस्सेव गुणजाइयस्स' पाठः।

१ उवगरण-उप्पायणया,
२ साहिल्लया,
३ वण्ण-संजलणया,
४ भार-पच्चोरुहणया।

इस प्रकार के गुणवान् अन्तेवासी शिष्य की यह चार प्रकार की विनय प्रतिपत्ति होती है। जैसे—

१ उपकरणोत्पादनता—संयम के साधक वस्त्र-पात्रादि का प्राप्त करना।
२ सहायता अशक्त साधुओं की सहायता करना।
३ वर्णसंज्वलनता—गण और गणी के गुण प्रकट करना।
४ भारप्रत्यवरोहणता—गण के भार का निर्वाह करना।

सूत्र २१

प्र०—से किं तं उवगरण-उप्पायणया ?
उ०—उवगरण-उप्पायणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ अणुप्पण्णाणं उवगरणाणं उप्पाइत्ता भवइ,
२ पोराणाणं उवगरणाणं सारक्खित्ता संगोवित्ता भवइ,
३ परित्तं जाणित्ता पच्चुद्धरित्ता भवइ,
४ अहाविहि संविभइत्ता भवइ।

से तं उवगरण-उप्पायणया।

प्रश्न—भगवन् ! उपकरणोत्पादनता क्या है।
उत्तर—उपकरणोत्पादनता चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१ अनुत्पन्न उपकरण उत्पादनता—नवीन उपकरणों को प्राप्त करना।
२ पुरातन उपकरणों का संरक्षण और संगोपन करना।
३ जो उपकरण परीत (अल्प) हों उनका प्रत्युद्धार करना अर्थात् अपने गण के या अन्य गण से आये हुए साधु के पास यदि अल्प उपकरण हो, या सर्वथा न हो तो उनकी पूर्ति करना।
४—शिष्यों के लिए यथायोग्य विभाग करके देना।
यह उपकरणोत्पादनता है।

सूत्र २२

प्र०—से किं तं साहिल्लया ?
उ०—साहिल्लया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

१ अणुलोम-वइ-सहिते यावि भवइ,
२ अणुलोम-काय-किरियत्ता यावि भवइ,
३ पडिरूव-काय-संफासणया यावि भवइ,
४ सव्वत्थेसु अपडिलोमया यावि भवइ।
से तं साहिल्लया।

प्रश्न—भगवन् ! सहायताविनय क्या है।

उत्तर - सहायताविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ अनुलोम (अनुकूल) वचन-सहित होना। अर्थात् जो गुरु कहें उसे विनयपूर्वक स्वीकार करना।
२ अनुलोम काय की क्रिया वाला होना। अर्थात्—जैसा गुरु कहे वैसी काय की क्रिया करना।
३ प्रतिरूप काय संस्पर्शनता-गुरु की यथोचित सेवा-सुश्रूपा करना।
४ सर्वार्थ-अप्रतिलोमता—सर्वकार्यो मे कुटिलता-रहित व्यवहार करना।
यह सहायताविनय है।

सूत्र २३

प्र० से किं तं वण्ण-संजलणया ?

उ०—वण्ण-संजलणया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा--

१ अहातच्चाणं वण्ण-वाई भवइ,
२ अवण्णवाइं पडिहणित्ता भवइ,
३ वण्णवाइं अणुवूहित्ता भवइ,
४ आय वुड्ढसेवी यावि भवइ।
से तं वण्ण-संजलणया।

प्रश्न—भगवन् ! वर्णसंज्वलनताविनय क्या है ?

उत्तर—वर्णसंज्वलनता विनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ यथातथ्य गुणों का वर्णवादी (प्रशंसा करने वाला) होना।
२ अवर्णवादी (अयथार्थ दोषों के कहने वाले) को निरुत्तर करने वाला होना।
३ वर्णवादी के गुणों का अनुबृंहण (संवर्धन) करना।
४ स्वयं वृद्धों की सेवा करना।
यह वर्णसंज्वलनताविनय है।

सूत्र २४

प्र०—से किं तं भार-पच्चोरुहणया ?

उ०—भार—पच्चोरुहणया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

१ असंगहिय-परिजण-संगहित्ता भवइ,

२ सेहं आयार-गोयर-संगहित्ता भवइ,

३ साहम्मियस्स गिलायमाणस्स अहाथामं वेयावच्चे अब्भुट्ठित्ता भवइ,

४ साहम्मियाणं अहिगरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सितोवस्सिए[1]
अपक्खग्गहिय-मज्झत्थ-भावभूए सम्मं ववहरमाणे
तस्स अधिगरणस्स खमावणाए विउसमणत्ताए सया समियं
अब्भुट्ठित्ता भवइ,
कहं णु साहम्मिया अप्पसद्दा, अप्पझंझा, अप्पकलहा, अप्पकसाया, अप्पतुमंतुमा, संजमबहुला, संवरबहुला, समाहिबहुला, अप्पमत्ता, संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणा—एवं च णं विहरेज्जा।

से तं भार-पच्चोरुहणया।

प्रश्न—भगवन् ! भारप्रत्यारोहणताविनय क्या है ?

उत्तर—भारप्रत्यारोहणताविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ असंगृहीत-परिजन-संग्रहीता होना (निराश्रित शिष्यों का संग्रह करना)।

२ नवीन दीक्षित शिष्यों को आचार और गोचरी की विधि सिखाना।

३ साधर्मिक रोगी साधुओं की यथाशक्ति वैयावृत्य के लिए अभ्युद्यत रहना।

४ साधर्मिकों में परस्पर अधिकरण (कलह-क्लेश) उत्पन्न हो जाने पर रागद्वेप का परित्याग करते हुए, किसी पक्ष-विशेप को ग्रहण न करके मध्यस्थ भाव रखे और सम्यक् व्यवहार का पालन करते हुए उस कलह के क्षमापन और उपशमन के लिए सदा ही अभ्युद्यत रहे।

प्रश्न—भगवन् ! ऐसा क्यों करें ?

उत्तर—क्योंकि ऐसा करने से साधर्मिक अनर्गल प्रलाप नहीं करेंगे, झंझा (झंझट) नहीं होगी, कलह, कपाय और तू-तू-मैं-मैं नहीं होगी। तथा साधर्मिक जन संयम-वहुल, संवर-वहुल, समाधिवहुल

---

१ टि० आ० प्रती—'अणिस्सितोवस्सिए वसित्ता' इति पाठः।

और अप्रमत्त होकर संयम से और तप से अपने आत्मा की भावना करते हुए विचरण करेंगे।

यह भारप्रत्यवरोहणताविनय है।

सूत्र २५

एसा खलु थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणि-संपया पण्णत्ता,

—त्ति बेमि।

इति चउत्था गणि-संपया समत्ता।

यह निश्चय से स्थविर भगवन्तों ने आठ प्रकार की गणिसम्पदा कही है।

—ऐसा मैं कहता हूं।

चौथी गणिसम्पदा दशा समाप्त।

□

पंचमी चित्तसमाहिट्ठाणा दसा

पांचवीं चित्तसमाधिस्थान दशा

सूत्र १

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं **दसचित्त-समाहि-ट्ठाणा** पण्णत्ता।

इस आर्हत प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने दश चित्तसमाधिस्थान कहे हैं।

सूत्र २

प्र०—कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस चित्तसमाहि-ट्ठाणा पण्णत्ता ?

उ०—इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस चित्तसमाहि-ट्ठाणा पण्णत्ता। तं जहा—

प्रश्न—भगवन् ! वे कौन से दस चित्तसमाधिस्थान स्थविर भगवन्तों ने कहे हैं ?

उत्तर—ये दश चित्तसमाधिस्थान स्थविर भगवन्तों ने कहे हैं। जैसे—

सूत्र ३

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नगरे होत्था। एत्थ नगर-वण्णओ भाणियव्वो।

उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नगर था। यहां पर नगर का वर्णन कहना चाहिए।

सूत्र ४

तस्स णं वाणियगामस्स नगरस्स बहिया उत्तर-पुरच्छिमे दिसीभाए दूति-पलासए णामं चेइए होत्था। चेइय-वण्णओ भाणियव्वो।

उस वाणिज्यग्राम नगर के बाहिर उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) मे दूतिपलाशक नामका चैत्य था। यहां पर चैत्य वर्णन कहना चाहिए।

सूत्र ५

जियसत्तू राया। तस्स धारणी नामं देवी। एवं सव्वं समोसरणं भाणियव्वं जाव-पुढवि-सिलापट्टए सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

वहां का राजा जितशत्रु था। उसकी धारणी नामकी देवी थी। इस प्रकार सर्व समवसरण कहना चाहिए। यावत् पृथ्वी-शिलापट्टक पर वर्धमान स्वामी विराजमान हुए। (धर्मोपदेश सुनने के लिए) मनुष्य-परिषद निकली। भगवान ने (श्रुत-चारित्र रूप) धर्म का निरूपण किया। परिषद वापिस चली गई।

सूत्र ६

'अज्जो! इति समणे भगवं महावीरे समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतित्ता एवं वयासी—

"इह खलु अज्जो! निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा
इरिया-समियाणं, भासा-समियाणं
एसणा-समियाण, आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणा-समियाणं,
उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठवणिया-समियाणं
मण-समियाणं, वय-समियाणं, काय-समियाणं,
मण-गुत्तीणं, वय-गुत्तीणं, काय-गुत्तीणं,
गुत्तिंदियाणं, गुत्तबंभयारीणं,
आयट्ठीणं,आयहियाणं, आय-जोईणं, आय-परक्कमाणं,
पक्खिय-पोसहिएसु समाहिपत्ताणं झियायमाणाणं
इमाइं दस चित्त-समाहि-ठाणाइं असमुप्पण्णपुव्वाइं समुप्पज्जेज्जा:

तं जहा—

१ धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जेज्जा,
सव्वं धम्मं जाणित्तए,
२ सण्णि-जाइ-सरणेणं सण्णि-णाणं वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा,
अप्पणो पोराणियं जाइं सुमरित्तए।
३ सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा,
अहातच्चं सुमिणं पासित्तए।
४ देवदंसणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा,
दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए।

५ ओहिणाणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा,
ओहिणा लोगं जाणित्तए ।

६ ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा,
ओहिणा लोयं पासित्तए ।

७ मणपज्जवनाणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा, अंतो मणुस्स-खित्तेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणित्तए ।

८ केवलणाणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा,
केवलकप्पं लोयालोयं जाणित्तए ।

९ केवलदंसणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा,
केवलकप्पं लोयालोयं पासित्तए ।

१० केवल-मरणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा, सव्वदुक्खपहाणाए ।

गाहाओ—

ओयं चित्तं समादाय, झाणं समणुपस्सइ ।[१]
धम्मे ठिओ अविमणो, निव्वाणमभिगच्छइ ॥१॥
ण इमं चित्तं समादाय, भुज्जो लोयंसि जायइ ।
अप्पणो उत्तमं ठाणं, सण्णि-णाणेण जाणइ ॥२॥
अहातच्चं तु सुमिणं, खिप्पं पासेइ संवुडे ।
सव्वं वा ओहं तरति, दुक्ख-दोयं विमुच्चइ ॥३॥
पंताइं भयमाणस्स, विवित्तं सयणासणं ।
अप्पाहारस्स दंतस्स, देवा दंसति ताइणो ॥४॥
सव्वकाम-विरत्तस्स, खमतो भय-भेरवं ।
तओ से ओही भवइ, संजयस्स तवस्सिणो ॥५॥
तवसा अवहड-लेस्सस्स, दंसणं परिसुज्झइ ।
उड्ढं अहे तिरियं च, सव्वं समणुपस्सति ॥६॥
सुसमाहिय लेस्सस्स, अवितक्कस्स भिक्खुणो ।
सव्वतो विप्पमुक्कस्स, आया जाणाइ पज्जवे ॥७॥
जया से णाणावरणं, सव्वं होइ खयं गयं ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणति केवली ॥८॥
जया से दंसणावरणं, सव्वं होइ खयं गयं ।
तया लोगमलोगं च, जिणो पासति केवली ॥९॥

---

१ आ० घा० प्रत्यो. 'झाण समुप्पज्जई' पाठः ।

पडिमाए विसुद्धाए, मोहणिज्जे खयं गए।
असेसं लोगमलोगं च, पासेति सुसमाहिए ॥१०॥
जहा मत्थय सूइए,[1] हताए हम्मइ तले।
एवं कम्माणि हम्मंति, मोहणिज्जे खयं गए ॥११॥
सेणावइम्मि निहए, जहा सेणा पणस्सति।
एवं कम्माणि णस्संति मोहणिज्जे खयं गए ॥१२॥
धूमहीणो जहा अग्गी, खीयति से निरिंधणे।
एवं कम्माणि खीयंति, मोहणिज्जे खयं गए ॥१३॥
सुक्क-मूले जहा रुक्खे, सिंचमाणे ण रोहति।
एवं कम्मा ण रोहंति, मोहणिज्जे खयं गए ॥१४॥
जहा दड्ढाणं बीयाणं, न जायंति पुणंकुरा।
कम्म-बीएसु दड्ढेसु न, जायंति भवंकुरा ॥१५॥
चिच्चा ओरालियं बोंदि, नाम-गोयं च केवली।
आउयं वेयणिज्जं च, छित्ता भवति नीरए ॥१६॥
एवं अभिसमागम्म, चित्तमादाय आउसो।
सेणि-सुद्धिमुवागम्म, आया सोधिमुवेहइ[2] ॥१७॥

— त्ति बेमि।

इति पंचमा चित्तसमाहिट्ठाणादसा समत्ता

'हे आर्यो'! इस प्रकार आमंत्रण (सम्बोधन) कर श्रमण भगवान महावीर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो से कहने लगे—

'हे आर्यो'! निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को, जो ईयासमितिवाले, भाषासमितिवाले, एषणासमितिवाले, आदान-भाण्ड-मात्रनिक्षेपणा समितिवाले, उच्चार-प्रस्रवण खेल-सिंघाणक-जल्ल-मल की परिष्ठापना समितिवाले, मनःसमितिवाले, वाक्समितिवाले, कायसमितिवाले, मनोगुप्तिवाले, वचनगुप्तिवाले, कायगुप्तिवाले, तथा गुप्तेन्द्रिय, गुप्तब्रह्मचारी, आत्मार्थी, आत्मा का हित करनेवाले, आत्मयोगी, आत्मपराक्रमी, पाक्षिक पौषधों में समाधि को प्राप्त और शुभ ध्यान करने वाले मुनियों को ये पूर्व अनुत्पन्न चित्त समाधि के दश स्थान उत्पन्न हो जाते हैं।
वे इस प्रकार हैं—

---

१ मत्थयसूइए, मत्थयसूइ।
२ अा० प्रतौ 'आया सुद्धिमुवागई। पा० प्रतौ 'आयसोहिमुवेइय।' इति पाठः।

१ पूर्व असमुत्पन्न (पहिले कभी उत्पन्न नहीं हुई) ऐसी धर्म-भावना यदि साधु के उत्पन्न हो जाय तो वह सर्व धर्म को जान सकता है, इससे चित्त को समाधि प्राप्त हो जाती है।

२ पूर्व अदृष्ट यथार्थ स्वप्न यदि दिख जाय तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

३ पूर्व असमुत्पन्न संज्ञि-जातिस्मरण द्वारा संज्ञि-ज्ञान यदि उसे उत्पन्न हो जाय और अपनी पुरानी जाति का स्मरण करले तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

४ पूर्व अदृष्ट देव-दर्शन यदि उसे हो जाय और दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव दिख जाय तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

५ पूर्व असमुत्पन्न अवधिज्ञान यदि उसे उत्पन्न हो जाय और अवधि-ज्ञान के द्वारा वह लोक को जान लेवे तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

६ पूर्व असमुत्पन्न अवधिदर्शन यदि उसे उत्पन्न हो जाय और अवधि-दर्शन के द्वारा वह लोक को देख लेवे तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

७ पूर्व असमुत्पन्न मनःपर्यवज्ञान यदि उसे उत्पन्न हो जाय और मनुष्य क्षेत्र के भीतर अढाई द्वीप-समुद्रों में संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोगत भावों को जान लेवे तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

८ पूर्व असमुत्पन्न केवलज्ञान यदि उसे उत्पन्न हो जाय और केवल-कल्प लोक-अलोक को जान लेवे तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

९ पूर्व असमुत्पन्न केवलदर्शन यदि उसे उत्पन्न हो जाय और केवल-कल्प लोक-अलोक को देख लेवे तो चित्त समाधि प्राप्त हो जाती है।

१० पूर्व असमुत्पन्न केवल-मरण यदि उसे प्राप्त हो जाय तो वह सर्व दुःखों के सर्वथा अभाव से पूर्ण शान्तिरूप समाधि को प्राप्त हो जाता है।

ओज (राग-द्वेष-रहित निर्मल) चित्त को धारण करने पर एकाग्रतारूप ध्यान उत्पन्न होता है और शंका-रहित धर्म में स्थित आत्मा निर्वाण को प्राप्त करता है ॥१॥

इस प्रकार चित्त-समाधि को धारण कर आत्मा पुनः-पुनः लोक में उत्पन्न नहीं होता और अपने उत्तम स्थान को संज्ञि-ज्ञान से जान लेता है ॥२॥

संवृत-आत्मा यथातथ्य स्वप्न को देखकर शीघ्र ही सर्व संसार रूपी समुद्र से पार हो जाता है, तथा शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के दुःखों से छूट जाता है ॥३॥

अल्प आहार करने वाले, अन्त-प्रान्तभोजी, विविक्त शयन-आसन-सेवी, इन्द्रियों का दमन करने वाले और षट्कायिक जीवों के रक्षक संयत साधु को देव-दर्शन होता है ॥४॥

सर्वकाम-भोगों से विरक्त, भीम-भैरव परीषह-उपसर्गों के सहन करने वाले तपस्वी संयत के अवधिज्ञान उत्पन्न होता है ॥५॥

जिसने तप के द्वारा अशुभ लेश्याओं को दूर कर दिया है उसका अवधि-दर्शन अति विशुद्ध हो जाता है और उसके द्वारा वह ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और सर्व तिर्यक्लोक को देखने लगता है ॥६॥

सुसमाधियुक्त प्रशस्त लेश्यावाले, वितर्क (विकल्प) से रहित, भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाले और सर्वप्रकार के बन्धनों से विप्रमुक्त साधुका आत्मा मन के पर्यवों को जानता है, अर्थात् मनःपर्यवज्ञानी हो जाता है ॥७॥

जब जीव का समस्त ज्ञानावरण कर्म क्षय को प्राप्त हो जाता है, तब वह केवली जिन होकर समस्त लोक और अलोक को जानता है ॥८॥

जब जीव का समस्त दर्शनावरण कर्मक्षय को प्राप्त हो जाता है, तब वह केवली जिन समस्त लोक और अलोक को देखता है ॥९॥

प्रतिमा (प्रतिज्ञा) के विशुद्धरूप से आराधन करने पर और मोहनीय कर्म के क्षय हो जाने पर सुसमाहित आत्मा सम्पूर्ण लोक और अलोक को देखता है ॥१०॥

जैसे मस्तक में सूची (सूई) से छेद किये जाने पर तालवृक्ष नीचे गिर जाता है, इसी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षय हो जाने पर शेष सर्व कर्म विनष्ट हो जाते हैं ॥११॥

जैसे सेनापति के मारे जाने पर सारी सेना विनष्ट हो जाती है, इसी प्रकार मोहनीयकर्म के क्षय हो जाने पर शेष सर्व कर्म विनष्ट हो जाते हैं ॥१२॥

जैसे धूम-रहित अग्नि इन्धन के अभाव से क्षय को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार मोहनीयकर्म के क्षय हो जाने पर सर्व कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं ॥१३॥

जैसे शुष्क जड़वाला वृक्ष जल-सिंचन किये जाने पर भी पुनः अंकुरित नहीं होता है, इसीप्रकार मोहनीयकर्म के क्षय हो जाने पर शेष कर्म भी उत्पन्न नहीं होते हैं ॥१४॥

जैसे जले हुए बीजों से पुनः अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं, इसी प्रकार कर्म-बीजों के जल जाने पर भवरूप अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥१५॥

औदारिक शरीर का त्यागकर, तथा नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय कर्म का छेदन कर केवली भगवान कर्म-रज से सर्वथा रहित हो जाते हैं ॥१६॥

हे आयुष्मान् शिष्य ! इस प्रकार (समाधि के भेदों को) जानकर राग और द्वेष से रहित चित्त को धारण कर शुद्ध श्रेणी (क्षपक-श्रेणी) को प्राप्त कर आत्मा शुद्धि को प्राप्त करता है, अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है ॥१७॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पाँचवीं चित्तसमाधिस्थान दशा समाप्त ।

□

छट्ठी उवासगपडिमा दसा

छट्ठी उपासकप्रतिमा दशा

सूत्र १

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं **एक्कारस उवासग-पडिमाओ** पण्णत्ताओ।

इस जैन प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने ग्यारह उपासक-प्रतिमाएँ कही हैं।

सूत्र २

प्र०—कयराओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं एक्कारस उवासग-पडिमाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—इमाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं एक्कारस उवासग-पडिमाओ पण्णत्ताओ।[1]

प्रश्न—भगवन् ! वे कौन-सी ग्यारह उपासक-प्रतिमाएँ स्थविर भगवन्तों ने कही हैं ?

उत्तर—ये ग्यारह उपासक-प्रतिमाएँ स्थविर भगवन्तों ने कही हैं। जैसे—

१ दर्शनप्रतिमा।

२ व्रतप्रतिमा।

३ सामायिकप्रतिमा।

---

१ दसण-वय-सामाइय-पोसहपडिमा अबंभ सच्चित्ते।
आरंभ-पेस-उद्दिट्ठवज्जए समणभूए य॥

—(द० नि० गा० ५५)

१ दंसणपडिमा	२ वयपडिमा
३ सामाइयपडिमा	४ पोसहपडिमा
५ दिवा बंभचेरपडिमा	६ दिवा-रत्ती-बंभचेरपडिमा
७ सचित्तपरिण्णायपडिमा	८ आरंभपरिण्णायपडिमा
९ पेसपरिण्णायपडिमा	१० उद्दिट्ठभत्तपरिण्णायपडिमा
११ समणभूयपडिमा	

४ प्रोषधप्रतिमा ।

५ दिवा ब्रह्मचर्यप्रतिमा ।

६ दिवा-रात्रि ब्रह्मचर्यप्रतिमा ।

७ सचित्त-परित्यागप्रतिमा ।

८ आरम्भ-परित्यागप्रतिमा ।

९ प्रेष्य-परित्यागप्रतिमा ।

१० उद्दिष्ट-भक्त परित्यागप्रतिमा ।

११ श्रमणभूतप्रतिमा ।

विशेषार्थ-- जीव अनादिकाल से मिथ्यात्व-परिणति से परिणमता चला आ रहा है। जब तक उसे सम्यकत्वरूप बोधि प्राप्त नहीं होती है, तब तक वह सम्यग्दर्शन के प्रतिपक्ष-स्वरूप मिथ्यादर्शन से परिणत होकर जीव-अजीव, पुण्य-पाप, इहलोक-परलोक आदि में कुछ भी विश्वास नहीं करता है। इसे मिथ्यादर्शनी, नास्तिक और अक्रियावादी आदि नामों से कहते हैं। सूत्रकार ने इस मिथ्यादृष्टि जीव का वर्णन अक्रियावादी के नाम से किया है। अक्रियावादी की प्रकृत्ति कैसी होती है, यह बात सूत्रकार आगे विस्तार से स्वयं कह रहे हैं।

अनादि काल से सभी जीवों के मिथ्यात्व विद्यमान रहता है, अतः उसका वर्णन किया जाता है--

सूत्र ३

अकिरियावाइ-वण्णणं, तं जहा --

अकिरियावाई यावि भवइ[1]

नाहिय-वाई, नाहिय-पण्णे, नाहिय-दिट्ठी

णो सम्मवाई, णो णितियवादी, ण संति परलोगवाई

णत्थि इह लोए, णत्थि पर लोए, णत्थि माया, णत्थि पिया, णत्थि अरिहंता, णत्थि चक्कवट्टी, णत्थि बलदेवा, णत्थि वासुदेवा, णत्थि णिरया, णत्थि णेरइया,

---

1 अकिरियावादी यावि भवति। अकिरियावादि त्ति सम्यग्दर्शन-प्रतिपक्षभूतं मिथ्यादर्शनं वर्तिजति। पच्छा सम्मद्दंसण। पुव्वं वा सव्वजीवाण मिच्छत्तं, पच्छा केसिंचि सम्मत्तं। अतो पुव्वं मिच्छत्तं। (दसाचूर्णि)

णत्थि सुकड-दुक्कडाणं फल-वित्ति-विसेसो,
णो सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णाफला भवंति,
णो दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णाफला भवंति,
अफले कल्लाण-पावए, णो पच्चायंति जीवा
णत्थि णिरयादि (णिरयगई, तिरियगई, मणुस्सगई, देवगई), णत्थि सिद्धी
से एवं वादी, एवं-पण्णे, एवं-दिट्ठी, एवं छंद-रागाभिनिविट्ठे यावि भवइ।

जो अक्रियावादी है, अर्थात् जीवादि पदार्थों के अस्तित्व का अपलाप करता है, नास्तिकवादी है, नास्तिक बुद्धिवाला है, नास्तिक दृष्टि रखता है। जो सम्यक्वादी नहीं है, नित्यवादी नहीं है अर्थात् क्षणिकवादी है, जो परलोक-वादी नहीं है। जो कहता है कि इहलोक नहीं है, परलोक नहीं है, माता नहीं है, पिता नहीं है, अरिहन्त नहीं है, चक्रवर्ती नहीं है, बलदेव नहीं हैं, वासुदेव नहीं हैं, नरक नहीं हैं, नारकी नहीं हैं, सुकृत (पुण्य) और दुष्कृत (पाप) कर्मो का फलवृत्ति विशेष नहीं है, सुचीर्ण (सम्यक् प्रकार से आचरित) कर्म, सुचीर्ण (शुभ) फल नहीं देते हैं और दुश्चीर्ण (कुत्सित प्रकार से आचरित) कर्म, दुश्चीर्ण (अशुभ) फल नहीं देते हैं, कल्याण (शुभ) कर्म और पाप कर्म फलरहित है, जीव परलोक में जाकर उत्पन्न नहीं होते, नरकादि (नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव ये) चार गतियां नही हैं, सिद्धि (मुक्ति) नहीं है। जो इस प्रकार कहने वाला है, इस प्रकार की प्रज्ञा (बुद्धि) वाला है, इस प्रकार की दृष्टिवाला है, और जो इस प्रकार के छन्द (इच्छा या लोभ) और राग (तीव्र अभिनिवेश या कदाग्रह) से अभिनिविष्ट (सम्पन्न) है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है।

सूत्र ४

से भवति महिच्छे, महारंभे, महापरिग्गहे, अहम्मिए, अहम्माणुए, अहम्मसेवी, अहम्मिट्ठे, अहम्मक्खाइ, अहम्मरागी अहम्मपलोई, अहम्मजीवी, अहम्म-पलज्जणे, अहम्म-सील-समुदायारे, अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव महा इच्छा वाला, महारम्भी, महापरिग्रही, अधार्मिक, अधर्मानुगामी, अधर्मसेवी, अधर्मिष्ठ, अधर्म-ख्यातिवाला, अधर्मानुरागी, अधर्म-द्रष्टा, अधर्मजीवी, अधर्म में अनुरक्त रहने वाला, अधार्मिक शील-स्वभाववाला, अधार्मिक आचरणवाला और अधर्म से ही आजीविका करता हुआ विचरता है।

सूत्र ५

"हण, छिंद, भिंद" विकत्तए,
लोहियपाणी, चंडे, रुद्दे, खुद्दे, असमिक्खियकारी, साहस्सिए,
उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कूड-कवड-साइ-संपओग-बहुले,
दुस्सीले, दुप्परिचए, दुच्चरिए, दुरणुणेए, दुव्वए, दुप्पडियाणंदे,
निस्सीले, निव्वए, निग्गुणे, निम्मेरे, निप्पच्चक्खाण-पोसहोववासे, असाहू।

वह मिथ्यादृष्टि नास्तिक आजीविका के लिए दूसरों से कहता है जीवों को मारो, उनके अंगों का छेदन करो, शिर-पेट आदि का भेदन करो, काटो, (इसका अन्त करो, वह स्वयं जीवों का अन्त करता है) उसके हाथ रक्त से रंगे रहते हैं, वह चण्ड, रौद्र और क्षुद्र होता है, असमीक्षित (विना विचारे) कार्य करता है, साहसिक होता है, लोगों से उत्कोच (रिश्वत-घूस) लेता है, प्रवचन, माया, निकृति (छल) कूट, कपट और सातिसम्प्रयोग (माया-जाल रचने) में बहुत कुशल होता है।

वह दुःशील होता है, दुष्टजनों से परिचय रखता है, दुश्चरित होता है, दुरनुनेय (दारुणस्वभावी) होता है, हिंसा-प्रधान व्रतों को धारण करता है, दुष्प्रत्यानन्द (दुष्कृत्यों को करने और सुनने से आनन्दित) होता है - अथवा उपकारी के साथ कृतघ्नता करके आनन्द मानता है, शील-रहित होता है, व्रत-रहित होता है, प्रत्याख्यान (त्याग) और पौपधोपवास नहीं करता है, अर्थात् श्रावक व्रतों से रहित होता है और असाधु है, अर्थात् साधुव्रतों का पालन नहीं करता है।

सूत्र ६

सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,
जाव - सव्वाओ परिग्गहाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,
एवं जाव—सव्वाओ कोहाओ, सव्वाओ माणाओ, सव्वाओ मायाओ, सव्वाओ लोभाओ, सव्वाओ पेज्जाओ, सव्वाओ दोसाओ, सव्वाओ कलहाओ, सव्वाओ अब्भक्खाणाओ, सव्वाओ पिसुण्णाओ, सव्वाओ परपरिवायाओ, सव्वाओ अरइ-रइ-मायामोसाओ सव्वाओ मिच्छादंसणसल्लाओ, अप्पडिविरए जावज्जीवाए।

है अर्थात् त्याग नहीं करता है। इसी प्रकार यावत् सर्व प्रकार के क्रोध से, सर्व प्रकार के मान से, सर्व प्रकार की माया से, सर्व प्रकार के लोभ से, सर्व प्रकार के प्रेय (राग) से, सर्व प्रकार के द्वेष से, सर्व प्रकार के कलह से, (परस्पर झगड़ा करने से) सर्वप्रकार के अभ्याख्यान से (दूसरों को असत्य दोष लगाकर कलंकित करने से) सर्वप्रकार के पैशुन्य से (चुगली करने से) सर्व प्रकार के पर-परिवाद (लोगों का पीठ पीछे अपवाद) करने से, सर्वप्रकार की रति (इष्ट पदार्थों के मिलने पर प्रसन्नता) और अरति (इष्ट पदार्थों के नहीं मिलने पर अप्रसन्नता) से और सर्वप्रकार की माया-मृषा (छलपूर्वक असत्य-भाषण) करने और वेष-भूषा बदलकर दूसरों को ठगने) से, तथा सर्वप्रकार के मिथ्यादर्शन शल्य से यावज्जीवन अविरत रहता है अर्थात् जन्म भर उक्त १८ पाप-स्थानों का सेवन करता रहता है।

सूत्र ७

सव्वाओ कसाय-दंतकट्ठ-ण्हाण-मद्दण-विलेवण-सद्द-फरिस - रस-रूव - गंध-मल्लालंकाराओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

सव्वाओ सगड-रह-जाण-जुग-गिल्लि-थिल्लि-सीया-संदमाणिया-सयणासण-जाण-वाहण-भोयण-पवित्थरविहिओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ आस-हत्थि-गो-महिस-गवेलय-दास-दासी-कम्मकर-पोरुस्साओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ कय-विक्कय-मासद्ध-मासरूपग-संववहाराओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ हिरण्ण-सुवण्ण-धण-धन्न-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवालाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ कूडतुल-कूडमाणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ आरंभ-समारंभाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ पयण-पयावणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ करण-करावणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

सव्वाओ कुट्टण-पिट्टणाओ तज्जण-तालणाओ वह-बंध-परिकिलेसाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मा पर-पाण-परियावण-कडा कज्जंति ततो वि य अप्पडिविरए जावज्जीवाए।

वह नास्तिक मिथ्यादृष्टि सर्वप्रकार के कषाय रंग के वस्त्र, दन्तकाष्ठ (दातुन-दन्तधावन) स्नान, मर्दन, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला और अलंकारों (आभूषणों) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्वप्रकार

के शकट, रथ, यान, युग, गिल्ली, थिल्ली, शिबिका, स्यन्दमानिका, शयनासान, यान, वाहन, भोजन और प्रविष्टर विधि (गृह-सम्बन्धी वस्त्र-पात्रादि) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। अर्थात् सभी प्रकार के पंचेन्द्रियों के विषय-सेवन में अति आसक्त रहता है, सभी प्रकार की सवारियों का उपभोग करता है और नानाप्रकार के गृह-सम्बन्धी वस्त्र, आभरण, भाजनादि का संग्रह करता रहता है।

वह मिथ्यादृष्टि सर्व अश्व, हस्ती, गो (गाय-बैल) महिष (भैंस-पाड़ा) गवेलक (बकरा-बकरी) मेष (भेड़-मेषा) दास, दासी, और कर्मकर (नौकर-चाकर आदि) पुरुष-समूह से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्वप्रकार के क्रय (खरीद) विक्रय (बिक्री) माषार्धमाष (मासा, आधा मासा) रूपक-सव्यवहार से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्व हिरण्य (चांदी) सुवर्ण, धन-धान्य, मणि-मौक्तिक, शंख-शिलप्रवाल (मूंगा) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्वप्रकार के कूटतुला, कूटमान (हीनाधिक तोल-नाप) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्व आरम्भ-समारम्भ से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्वप्रकार के पचन-पाचन से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्व कार्यों के करने-कराने से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। वह सर्वप्रकार के कूटने-पीटनेसे, तर्जन-ताड़नसे, वध, बन्ध और परिक्लेशसे यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है—यावत् जितने भी उक्त प्रकार के सावद्य (पाप-युक्त) अबोधिक (मिथ्यात्ववर्धक) और दूसरे जीवों के प्राणों को परिताप पहुँचाने वाले कर्म किये जाते हैं, उनसे भी वह यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। अर्थात् उक्त सभी प्रकार के पाप-कार्यों एवं आरम्भ-समारम्भों में संलग्न रहता है।

(वह मिथ्यादृष्टि पापात्मा किस प्रकार से उक्त पाप-कार्यों के करने में लगा रहता है, इस बात को एक दृष्टान्त-द्वारा स्पष्ट करते हैं—)

सूत्र ८

से जहानामए केइ पुरिसे

कलम-मसूर-तिल-मूंग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सेत्तीणा हरिमंथ-जवजवा एवमाइएहिं अयते कूरे मिच्छा दंड पउंजइ।

एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए

तित्तिर - वट्टग - लावग-कपोत-कपिंजल-मिय-महिस-वराह-गाह-गोह-कुम्म-सरीसिवादिएहिं

अयते कूरे मिच्छा दंडं पउंजइ।

जैसे कोई पुरुष कलम (धान्य) मसूर, तिल, मूंग, माष (उड़द) निष्पाव (वालोल, धान्यविशेष) कुलत्थ (कुलथी) आलिसिंदक (चवला) सेतीणा (तुवर) हरिमंथ (काला चना) जव-जव (जवार) और इसी प्रकार के दूसरे धान्यों को बिना किसी यतना के (जीव-रक्षा के भाव बिना) क्रूरतापूर्वक उपमर्दन करता हुआ मिथ्यादंड प्रयोग करता है, अर्थात् उक्त धान्यों को जिस प्रकार खेत में लुनते, खलिहान में दलन-मलन करते, मूसल से उखली में कूटते, चक्की से दलते-पीसते और चूल्हे पर रांधते हुए निर्दय व्यवहार करता है उसी प्रकार कोई पुरुष-विशेष तीतर, बटेर, लावा, कबूतर, कपिंजल (कुरज—एक पक्षि विशेष) मृग, भैंसा, वराह (सूकर) ग्राह (मगर) गोधा (गोह, गोहरा) कछुआ और सर्प आदि निरपराध प्राणियों पर अयतना से क्रूरतापूर्वक मिथ्यादंड का प्रयोग करता है, अर्थात् इन जीवों के मारने में कोई पाप नहीं है, इस बुद्धि से उनका निर्दयतापूर्वक घात करता है।

सूत्र ६

जावि य से बाहिरिया परिसा भवति, तं जहा -
दासे इ वा, पेसे इ वा, भिअए इ वा, भाइल्ले इ वा,
कम्मकरे इ वा, भोगपुरिसे इ वा,
तेसिं पि य णं अण्णयरगंसि अहा-लहुयंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेति। तं जहा—

इमं दंडेह, इमं मुंडेह, इमं तज्जेह, इमं तालेह, इमं अंदुय-बंधणं करेह,
इमं नियल-बंधणं करेह, इमं हडि-बंधणं करेह, इमं चारग-बंधणं करेह,
इमं नियल-जुयल-संकोडिय-मोडियं करेह, इमं हत्थछिन्नयं करेह,
इमं पाय-छिन्नयं करेह, इमं कण्ण-छिन्नयं करेह, इमं नक्क-छिन्नयं करेह,
इमं सीस-छिन्नयं करेह, इमं मुख-छिन्नयं करेह, इमं वेय-छिन्नयं करेह,
इमं उट्ठछिन्नयं करेह, इमं हियउप्पाडियं करेह,
एवं नयण-वसण-दसण-वदण-जिब्भ-उप्पाडियं करेह,इमं उल्लंबियं करेह,इमं घासियं,
इमं घोलियं, इमं सूलाइयं,इमं सूलाभिन्नं, इमं खारवत्तियं करेह,इमं दब्भवत्तियं करेह
इमं सीह-पुच्छयं करेह, इमं वसभपुच्छयं करेह, इमं दवग्गि-दड्ढयं करेह,
इमं काकणीमंस-खावियं करेह इमं भत्तपाण-निरुद्धयं करेह,
इमं जावज्जीव-बंधणं करेह, इमं अन्नतरेणं असुभ-कुमारेणं मारेह।

उस मिथ्यादृष्टि की जो वाहिरी परिषद् होती है, जैसे दास (क्रीत किंकर) प्रेष्य (दूत) भृतक (वेतन से काम करने वाला) भागिक (भागीदार कार्यकर्ता) कर्मकर (घरेलू काम करने वाला) या भोगपुरुष (उसके उपार्जित धन का भोग करने वाला) आदि, उनके द्वारा किसी अतिलघु अपराध के हो जाने पर स्वयं ही भारी दण्ड देने की आज्ञा देता है।

जैसे—(हे पुरुषो), इसे डण्डे आदि से पीटो, इसका शिर मुंडा डालो, इसे तर्जित करो, इसे थप्पड़ लगाओ, इस के हाथों में हथकड़ी डालो, इसके पैरों में बेड़ी डालो, इसे खोड़े में डालो, इसे कारागृह (जेल) में बन्द करो, इसके दोनों पैरों को सांकल से कसकर मोड़ दो, इसके हाथ काट दो, इसके पैर काट दो, इसके कान काट दो, इसकी नाक काट दो, इसके ओठ काट दो, इसका शिर काट दो, इसका मुख छिन्न-भिन्न कर दो, इसका पुरुष-चिह्न काट दो, इसका हृदय-विदारण करो। इसी प्रकार इसके नेत्र, वृषण (अण्डकोष) दशन (दांत) वदन (मुख) और जीभ को उखाड़ दो, इसे रस्सी से बांध कर वृक्ष आदि पर लटका दो, इसे बांध कर भूमि पर घसीटो, इसका दही के समान मन्थन करो, इसे शूली पर चढ़ा दो, इसे त्रिशूल से भेद दो, इसके शरीर को शस्त्रों से छिन्न-भिन्न कर उस पर क्षार (नमक, सज्जी आदि खारी वस्तु) भर दो, इसके घावों में डाभ (तीक्ष्ण घास कास) चुनाओ इसे सिंह की पूँछ से बाँध कर छोड़ दो, इसे वृषभ सांड की पूँछ से बाँध कर छोड़ दो, इसे दावाग्नि में जलादो, इसके मांस के कौडी के समान टुकड़े बना कर काक-गिद्ध आदि को खिला दो, इसका खान-पान बन्द कर दो, इसे यावज्जीवन बन्धन में रखो, इसे किसी भी अन्य प्रकार की कुमौत से मार डालो।

सूत्र १०

जा वि य सा अब्भितरिया परिसा भवति, तं जहा—

माया इ वा, पिया इ वा, भाया इ वा, भगिणी इ वा,

भज्जा इ वा, धूया इ वा, सुण्हा इ वा तेसिं पि य णं अण्णयरंसि

अहा लहुयंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेति, तं जहा—

सीयोदग-वियडंसि कायं वोलित्ता भवइ ;

उणोदग-वियडेण कायं ओसिंचित्ता भवइ ;

अगणिकाएण कायं उड्डहित्ता भवइ ;

जोत्तेण वा, वेत्तेण वा, नेत्तेण वा, कसेण वा, छिवाडीए वा, लयाए वा, पासाइं उद्दालित्ता भवइ,

दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलुएण वा, कवालेण वा, कायं आउट्टित्ता भवइ।

तहप्पगारे पुरिस-जाए संवसमाणे दुम्मणा भवंति,

तहप्पगारे पुरिस-जाए विप्पवसमाणे सुमणा भवंति।

तहप्पगारे पुरिस-जाए दंडमासी[1], दंडगुरुए, दंडपुरक्खडे,

अहिए अस्सि लोयंसि, अहिए परंसि लोयंसि।

उस मिथ्यादृष्टि की जो आभ्यन्तर परिषद् है, जैसे—माता, पिता, भ्राता भगिनी, भार्या (पत्नी) पुत्री, स्नुषा (पुत्रवधू) आदि, उनके द्वारा किसी छोटे से अपराध के होने पर स्वयं ही भारी दंड देता है। जैसे—शीतकाल में अत्यन्त शीतलजल से भरे तालाब आदि में उसका शरीर डुबाता है, उष्णकाल में अत्यन्त उष्णजल उसके शरीर पर सिंचन करता है, उनके शरीर को आग से जलाता है, जोत (बैलों के गले में बांधने के उपकरण) से, वेंत आदि से, नेत्र (दही मथने की रस्सी) से, कशा (हण्टर चाबुक) से, छिवाडी (चिकनी चाबुक) से, या लता (गुर-वेल) से मार-मारकर दोनों पार्श्वभागों का चमड़ा उधेड़ देता है। अथवा डंडे से, हड्डी, से मुट्ठी से, पत्थर के ढेले से और कपाल (खप्पर) से उनके शरीर को कूटता-पीटता है।

इस प्रकार के पुरुषवर्ग के साथ रहने वाले मनुष्य दुर्मन (दुखी) रहते हैं और इस प्रकार के पुरुषवर्ग से दूर रहने पर मनुष्य प्रसन्न रहते हैं। इस प्रकार का पुरुषवर्ग सदा डंडे को पार्श्वभाग में रखता है और किसी के अल्प अपराध के होने पर भी अधिक से अधिक दंड देने का विचार रखता है, तथा दंड देने को सदा उद्यत रहता है और डंडे को ही आगे कर बात करता है। ऐसा मनुष्य इस लोक में भी अपना अहित-कारक है और परलोक में भी अपना अकल्याण करने वाला है।

सूत्र ११

ते दुक्खेंति, सोयंति,

एवं झुरेंति, तिप्पंति, पिट्टेंति, परितप्पंति,

ते दुक्खण-सोयण-झुरण-तिप्पण-पिट्टण-परितप्पण-वह-बंध-परिकिलेसाओ अप्पडिविरए भवंति।

---

१ पा० प्र॰ो दंडपासी।

उक्त प्रकार के मिथ्यादृष्टि अक्रियावादी नास्तिक लोग दूसरों को दुःखित करते हैं, शोक-सन्तप्त करते हैं, दुःख पहुंचाकर झूरित करते हैं, सताते हैं, पीड़ा पहुंचाते हैं, पीटते हैं और अनेक प्रकार से परिताप पहुंचाते हैं ।

वह दूसरों को दुःख देने से, शोक उत्पन्न करने से, झूराने से, रुलाने से, पीटने से, परितापन से, वध से, बंध से नाना प्रकार से दुःख-सन्ताप पहुंचाता हुआ उनसे अप्रतिविरत रहता है, अर्थात् सदा ही दूसरों को दुःख पहुंचाने में संलग्न रहता है ।

सूत्र १२

एवामेव से इत्थि-काम भोगेहिं मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे,
-जाव-वासाइं चउ-पंचमाइं, छ-दसमाणि वा
अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं
भुंजित्ता कामभोगाइं,
पसेवित्ता वेरायतणाइं,
संचिणित्ता बहुयं पावाइं कम्माइं,
ओसन्नं संभार-कडेण कम्मुणा ।

से जहानामए **अयगोले इ वा, सेलगोलेइ वा उदयंसि पक्खित्ते समाणे**
उदग-तलमइवत्तित्ता अहे धरणि-तले पइट्ठाणे भवइ,
एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए
वज्ज-बहुले, धुण्ण-बहुले, पंक-बहुले, वेर-बहुले
दंभ-नियडि-साइ-बहुले, आसायणा-बहुले
अयस-बहुले, अप्पत्तिय-बहुले
ओस्सण्णं तस-पाण-घाती
कालमासे कालं किच्चा
धरणि-तलमइवत्तित्ता अहे नरग-धरणितले पइट्ठाणे भवइ ।

इसी प्रकार वह स्त्री-सम्बन्धी काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त, और पंचेन्द्रियों के विषयों में निमग्न रहता है । इस प्रकार वह चार-पांच वर्ष, या छह-सात वर्ष, या आठ-दस वर्ष या इसे अल्प या अधिक काल तक काम-भोगों को भोगकर वैर-भाव के सभी स्थानों का सेवन कर और बहुत पाप-कर्मों का संचय कर प्रायः स्वकृत कर्मों के भार से जैसे लोहे का गोला या पत्थर का गोला जल में फेंका जाने पर जल-तल का अतिक्रमण कर नीचे भूमि-तल में जा पैठता है, वैसे ही उक्त प्रकार का पुरुष वर्ग वज्रवत् पाप-बहुल, क्लेश बहुल, पंक-बहुल,

वैर-बहुल, दम्भ-निकृति-साति-बहुल, आशातना-बहुल अयश-बहुल, अप्रतीति-बहुल होता हुआ, प्रायः त्रस प्राणियों का घात करता हुआ कालमास में काल (मरण) करके इस भूमि-तल का अतिक्रमण कर नीचे नरक भूमि-तल में जाकर प्रतिष्ठित हो जाता है।

सूत्र १३

ते णं णरगा-
अंतो वट्टा, बाहिं चउरंसा, अहे-खुरप्पसंठाण-संठिआ, निच्चंधकार-तमसा,
ववगय-गह-चंद-सूर-णक्खत्त-जोइस-पहा,
मेद-वसा-मंस-रुहिर-पूय-पडल-चिक्खल-लित्ताणुलेवणतला,
असुइविस्सा, परमदुब्भिगंधा,
काउय-अगणि-वण्णाभा, कक्खड-फासा दुरहियासा।
असुभा नरगा।
असुभा नरएसु वेयणा।
नो चेव णं णरएसु नेरइया निद्दायंति वा, पयलायंति वा, सुइं वा, रइं वा, धिइं वा, मइं वा उवलभंति।
ते णं तत्थ-
उज्जलं, विउलं, पगाढं, कक्कसं, कडुयं, चंडं, दुक्खं, दुग्गं, तिक्खं, तिव्वं दुरहियासं
नरएसु णेरइया नरय-वेयणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति।

वे नरक भीतर से वृत्त (गोल) और बाहिर चतुरस्र (चौकोण) हैं, नीचे क्षुरप्र (क्षुरा-उस्तरा) के आकार से संस्थित है, नित्य घोर अन्धकार से व्याप्त हैं, और चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र इन ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं, उन नरकों का भूमितल मेद-वसा (चर्वी) मांस, रुधिर, पूय (विकृत रक्त-पीव), पटल (समूह) सी कीचड़ से लिप्त-अतिलिप्त है। वे नरक मल-मूत्रादि अशुचि पदार्थों से भरे हुए हैं, परम दुर्गन्धमय हैं, काली या कपोत वर्ण वाली अग्नि के वर्ण जैसी आभा वाले हैं, कर्कश स्पर्श वाले हैं, अतः उनका स्पर्श असह्य है, वे नरक अशुभ हैं अतः उन नरकों में वेदनाएं भी अशुभ ही होती हैं। उन नरकों में नारकी न निद्रा ही ले सकते हैं और न ऊंघ ही सकते हैं। उन्हें स्मृति, रति, धृति और मति उपलब्ध नहीं होती है। वे नारकी उन नरकों में उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, चण्ड, रौद्र, दुःखमय तीक्ष्ण, तीव्र दुःसह नरक-वेदनाओं का प्रति-समय अनुभव करते हुए विचरते हैं।

सूत्र १४

से जहानामए रुक्खे सिया

पव्वयग्गे जाए, मूलच्छिन्ने, अग्गे गरुए,

जओ निन्नं, जओ दुग्गं, जओ विसमं तओ पवडति ।

एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं, माराओ मारं, दुक्खाओ दुक्खं,

दाहिण-गामि णेरइए, कण्हपक्खिए, आगमेस्साणं दुल्लभबोहिए यावि भवति ।

से तं अकिरिया-वाई यावि भवइ ।

जैसे पर्वत के अग्रभाग (शिखर) पर उत्पन्न वृक्ष मूल भाग के काट दिये जाने पर उपरिम भाग के भारी होने से जहाँ निम्न (नीचा) स्थान है, जहाँ दुर्गम प्रवेश है और जहाँ विषम स्थल है वहाँ गिरता है, इसी प्रकार उपर्युक्त प्रकार का मिथ्यात्वी घोर पापी पुरुष वर्ग एक गर्भ से दूसरे गर्भ में, एक जन्म से दूसरे जन्म में, एक मरण से दूसरे मरण में, और एक दुःख से दूसरे दुःख में पड़ता है । वह दक्षिण-दिशा-स्थित घोर नरकों में जाता है, वह कृष्ण पाक्षिक नारकी आगामी काल में यावत् दुर्लभबोधि वाला होता है ।

उक्त प्रकार का जीव अक्रियावादी है ।

किरियावाइ-वण्णणं—

सूत्र १५

प्र०—से किं तं किरिया-वाई यावि भवति ?

उ०—किरिया-वाई, भवति ।

तं जहा :—

आहिय-वाई, आहिय-पण्णे, आहिय-दिट्ठी,

सम्मा-वाई, निया-वाई, संति पर-लोगवादी,

"अत्थि इहलोगे, अत्थि परलोगे, अत्थि माया, अत्थि पिया, अत्थि अरिहंता,

अत्थि चक्कवट्टी, अत्थि बलदेवा, अत्थि वासुदेवा,

अत्थि सुकड-दुक्कडाणं कम्माणं फल-वित्ति-विसेसे,

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवंति,

दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णा फला भवंति,

सफले कल्लाण-पावए,

पच्चायंति जीवा,

अत्थि नेरइया-जाव—अत्थि देवा अत्थि सिद्धी ।

क्रियावादी का वर्णन

प्रश्न—भगवन् ! क्रियावादी कौन है ?

उत्तर—जो अक्रियावादी से विपरीत आचरण करता है।

यथा-जो आस्तिकवादी है, आस्तिक बुद्धि है, आस्तिक दृष्टि है, सम्यक्वादी है, नित्य (मोक्ष) वादी है। परलोकवादी है जो यह मानता है कि इह लोक है, परलोक है, माता है, पिता हैं, अरिहंत हैं, चक्रवर्ती है, बलदेव हैं, वासुदेव है, सुकृत और दुष्कृत कर्मों का फलवृत्ति-विशेष होता है सु-आचरित कर्म शुभफल देते हैं। और असद्-आचरित कर्म अशुभ फल देते है। कल्याण (पुण्य) और पाप फल-सहित हैं, अर्थात् अपना फल देते है, जीव परलोक में जाते भी हैं और आते भी हैं, नारकी हैं, यावत् (तिर्यंच हैं, मनुष्य है, देव हैं)और सिद्धि (मुक्ति) है। इस प्रकार मानने वाला आस्तिक क्रियावादी कहलाता है।

विशेषार्थ—जो नास्तिक नहीं है, जीव, पुण्य-पाप, लोक-परलोक आदि को मानता है, ऐसा आस्तिकवादी मनुष्य क्रियावादी है। यह अल्प आरम्भी, अल्प परिग्रही, और अल्प इच्छाओं का धारक होता है। यह धार्मिक, धर्मरुचि, धर्मसेवी, धर्मनिष्ठ, धर्मानुरागी, धर्मजीवी, धर्म-कार्यदर्शक, धर्म-कथक, धर्म-शील और सदाचार का धारक होता है एवं धर्मपूर्वक अपनी आजीविका करता है। वह किसी जीव को मारने, काटने और ताड़ने के लिए किसी से नहीं कहता है। प्रत्युत स्वयं जीव-रक्षा करता है और दूसरों से धर्म की रक्षा करने के लिए कहता है, उन्हें प्रेरणा देता है, वह हिंसादि पापों से यथासंभव बचने का प्रयत्न करता है, वह मन्दकषायी होता है, यथाशक्य कषायरूप प्रवृत्ति से बचता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं होता। वह सभी प्रकार के आवश्यक बाह्य परिग्रहों को रखते हुए भी उसमें मूर्च्छित नहीं होता। वह यद्यपि किसी व्रत, शील आदि का पालन नहीं करता है, तथापि दुराचार दुष्प्रवृत्ति और कुसंगति से बचता है, वह ऐसा कूड-कपट नहीं करता, जिससे कि दूसरे के जान-माल का घात हो। वह आजीविका के लिए उन ही व्यापारों को स्वीकार करता है जिनमें कम से कम जीव-घात हो। वह अपने अधीनस्थ नौकर-चाकरों के साथ एवं कुटुम्ब-परिजनों के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार नहीं करता, प्रत्युत स्नेह और वात्सल्य भाव रखता है। किसी के द्वारा बड़े से बड़ा अपराध हो जाने पर भी वह कम से कम दण्ड देता है। उसके सदय और प्रेम-परिपूर्ण व्यवहार से नौकर-चाकर, कुटुम्ब-जन और समीपवर्ती भी प्रसन्न रहते हैं। ऐसी प्रवृत्ति वाला मनुष्य विवेकी, विचारपूर्वक कार्य करने वाला, न्यायपूर्वक आजीविका करने वाला, लोगों का विश्वासपात्र और दूसरों का सहायक, देव-गुरु का भक्त एवं प्रवचन का अनुरागी होता है।

सूत्र १६

से एवं-वादी एवं-पन्ने एवं-दिट्ठि-छंद-रागभिनिविट्ठे[1] या वि भवइ।

से भवइ महिच्छे जाव-उत्तरगामिणेरइए सुक्कपक्खिए, आगमेस्साणं सुलभ-बोहिए यावि भवइ।

से तं किरिया-वादी।

इस प्रकार का आस्तिकवादी, आस्तिक प्रज्ञ, और आस्तिक दृष्टि (कदाचित् चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से) स्वच्छन्द रागाभिनिविष्ट यावत् (प्रतिपक्ष के द्वारा आक्रमण किये जाने पर युद्ध आदि के अवसर पर हिंसादि क्रूर कार्य भी करता है और कदाचित् महा आरम्भ, महापरिग्रह और) महान् इच्छाओं वाला भी होता है, और वैसी दशा में यदि नारकायु का वन्ध कर लेता है तो वह (दक्षिण दिशावर्ती नरकों में उत्पन्न नहीं होता। किन्तु) उत्तर दिशावर्ती नरकों में उत्पन्न होता है, वह शुक्ल पाक्षिक होता है और आगामीकाल में सुलभबोधि होता है, यावत् सुगतियों को प्राप्त करता हुआ अन्त में मोक्षगामी होता है।

यह क्रियावादी है।

विशेषार्थ—जिस भव्य जीव को एक बार बोधि अर्थात् सम्यक्त्व की प्राप्ति होकर छूट भी जाय, तो भी वह अर्धपुद्गल-परावर्तन काल के भीतर अवश्य ही उसे प्राप्त कर नियम से मोक्ष प्राप्त करता है, ऐसे परीत (अल्प) संसारी जीव को शुक्ल पाक्षिक कहते हैं और जिनका भव-भ्रमण अर्धपुद्गल परावर्तन से अधिक है और जो अभव्य जीव है वे कृष्णपाक्षिक कहलाते हैं।

सूत्र १७

(१) अह पढमा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवति।

तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय[2]-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं नो सम्मं पट्ठवित्ताइं भवंति।

से तं पढमा उवासग-पडिमा। (१)

प्रथम उपासक दर्शन-प्रतिमा

क्रियावादी मनुष्य सर्वधर्मरुचिवाला होता है, अर्थात् श्रावक धर्म और मुनिधर्म में श्रद्धा रखता है। किन्तु वह अनेक शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपातादि-

---

१ आ० प्रतौ राग-मति-निविट्ठे।

२ आ० प्रतौ गुण-वेरमण।

विरमण, प्रत्याख्यान, और पौपधोपवास आदि का सम्यक् प्रकार से धारक नहीं होता।

विशेषार्थ—प्रथम प्रतिमाधारी यद्यपि पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और सामायिक आदि चार शिक्षाव्रतों का सम्यक् रीति से परिपालन नहीं करता है, परन्तु जिन-वचनों पर दृढ़श्रद्धा होने से वह अपनी शक्ति के अनुसार उनका यथासंभव पालन करता है और सम्यग्दर्शन का निरतिचार निर्दोष पालन करता है। इस प्रतिमा के धारण करने वाले को दार्शनिक श्रावक कहते हैं।

यहाँ यह भी विशेष ज्ञातव्य है कि इन प्रतिमाओं को उपासक दशा कहा गया है। जिसका अर्थ होता है—मुनिधर्म की उपासना करने वाला। सामान्य गृहस्थ का दैनिक कर्तव्य बतलाया गया है कि वह साधु की उपासना करे, उनके प्रवचन सुने और यथाशक्ति श्रावक के बारह व्रतों में से जितने भी जैसे पाल सके, उनके पालन करने का अभ्यास करे।

उपासक दशा सूत्र के अनुसार जब व्रतधारी श्रावक अपनी आयु को अल्प समझता है, तब वह इन ग्यारह दशाओं को यथा नियत-काल तक पालन करता हुआ जीवन के अन्तिम दिनों में संलेखना स्वीकार करके देह का परित्याग करता है। जब वह इन उपासक दशाओं को स्वीकार करता है तब प्रथम दशा का शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि-प्रशंसा और अन्यदृष्टि-संस्तव इन पांच अतिचारों का सर्वथा त्याग कर अपने सम्यग्दर्शन को निर्मल बनाता है। इस दर्शन प्रतिमा या पहली उपासक-दशा का काल एक-दो दिन से लेकर उत्कृष्ट एक मास बतलाया गया है। इसके साधन या आराधन काल में कोई देव या मनुष्य उसके सम्यग्दर्शन की दृढ़ता के परीक्षणार्थ कितना भी भयंकर उपसर्ग करे तो भी वह अपनी श्रद्धा से और जिन-प्रणीत धर्म से विचलित नहीं होता है। इस प्रथम दशा के लिए सम्यग्दर्शन की दृढ़ता आवश्यक है इसीलिए इसे दर्शनप्रतिमा कहा जाता है, अर्थात् इसका धारक सम्यक्त्व की साक्षात् मूर्ति होता है।

सूत्र १८

(२) अहावरा दोच्चा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ।

तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठविताइं भवंति।

से णं सामाइयं देसावगासियं नो सम्मं अणुपालित्ता भवइ।

से तं दोच्चा उवासग-पडिमा। (२)

अब **दूसरी उपासक प्रतिमा** का वर्णन करते हैं—

वह सर्वधर्मरुचिवाला होता है—यावत् यतिके दशों धर्मों का दृढ़ श्रद्धानी होता है। वह नियम से बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपातादि-विरमण, प्रत्याख्यान और अनेक पौषधोपवास का सम्यक् प्रकार परिपालक होता है, किन्तु वह सामायिक और देशावकाशिकव्रत का सम्यक् प्रतिपालक नहीं होता है। यह दूसरी उपासक प्रतिमा है।

विशेषार्थ—श्रावक स्थूल-प्राणातिपात-विरमण, स्थूल-मृषावाद-विरमण, स्थूल अदत्तादान विरमाण, स्थूल-मैथुन-विरमण (परस्त्री सेवन-परित्याग) और परिग्रहपरिमाण, इन पांच अणुव्रतों का, दिग्व्रत, अनर्थ-दण्डव्रत और उपभोग-परिभोग परिमाण इन तीन गुणव्रतों का, तथा सामायिक, पौषधोपवास, देशावकाशिकव्रत और अतिथिसंविभागव्रत, इन चार शिक्षाव्रतों का पालन करता है। इनमें से दूसरी प्रतिमा में पांच अणुव्रत और तीन गुणव्रत का निरतिचार पालन करना अत्यावश्यक है। शिक्षाव्रतों में से वह केवल सामायिक और देशावकाशिक व्रत का निरतिचार सम्यक् प्रकार से पालन नहीं करता है। इस प्रतिमा का काल एक-दो दिन से लगाकर दो मास का है। उसके पश्चात् वह तीसरी प्रतिमा को स्वीकार करता है।

सूत्र १९

(३) अहावरा तच्चा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई या वि भवइ।

तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति।

से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालित्ता भवइ।

से णं चउद्दसि[1]-अट्ठमि-उद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहोववासं नो सम्मं अणुपालित्ता भवइ।

से तं तच्चा उवासग-पडिमा। (३)

अब **तीसरी उपासक प्रतिमा** का निरूपण करते हैं—

वह सर्वधर्मरुचिवाला यावत् पूर्वोक्त दोनों प्रतिमाओं का सम्यक् परिपालक होता है। वह नियम से बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, पाप-विरमण, प्रत्याख्यान

१ चउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्ण०।

और पौपधोपवास का सम्यक् प्रकार से प्रतिपालक होता है, वह सामायिक और देशावकाशिक शिक्षाव्रत का भी सम्यक् परिपालक होता है। किन्तु चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी इन तिथियों में परिपूर्ण पौपधोपवास का सम्यक् परिपालक नहीं होता। प्रोपध या पौपध चार प्रकार के कहे गये हैं— आहार प्रोपध, शरीर-सत्कारप्रोपध, अव्यापारप्रोपध और ब्रह्मचर्यप्रोपध।

(इस प्रतिमा के पालन का उत्कृष्ट काल तीन मास है उसके पश्चात् वह चौथी प्रतिमा को स्वीकार करता है।)

यह तीसरी उपासक प्रतिमा है।

सूत्र २०

(४) अहावरा चउत्था उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ।

तस्स णं बहूइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति।

से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालित्ता भवइ।

से णं चउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालित्ता भवइ।

से णं एग-राइयं उवासग-पडिमं नो सम्मं अणुपालित्ता भवइ।

से तं चउत्था उवासग-पडिमा। (४)

अब **चौथी उपासक प्रतिमा** का निरूपण करते है—

वह सर्वधर्मरुचिवाला यावत् पूर्वोक्त तीनों प्रतिमाओं का यथावत् अनुपालन करता है। वह नियम से बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, पाप-विरमण, प्रत्याख्यान, और पौपधोपवासों का सम्यक् परिपालक होता है, वह सामायिक और देशावकाशिक शिक्षाव्रतों को भी सम्यक् प्रकार से पालन करता है। वह चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी तिथियों में परिपूर्ण पौपधोपवास का सम्यक् परिपालन करता है। किन्तु एक रात्रिक उपासक प्रतिमा का सम्यक् परिपालन नहीं करता है।

(इस प्रतिमा का उत्कृष्ट काल चार मास है। उसके पश्चात् वह पांचवी प्रतिमा को स्वीकार करता है।)

यह चौथी उपासक-प्रतिमा है।

सूत्र २१

(५) अहावरा पंचमा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ ।

तस्स णं बहुइं सीलवय-गुणवय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं सम्मं अणुपालित्ता भवइ । से णं सामाइयं देसावगासियं अहासुत्तं अहाकप्पं अहातच्चं अहामग्गं सम्मं काएणं फासित्ता पालित्ता, सोहित्ता, पूरित्ता, किट्टित्ता, आणाए अणुपालित्ता भवइ । से णं चउद्दसि-अट्ठमि-उद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं अणुपालित्ता भवइ ।

से णं एग-राइयं उवासग-पडिमं सम्मं अणुपालित्ता भवइ ।

से णं असिणाणए, वियडभोई, मउलिकडे, दिया बंभचारी, रत्तिं परिमाणकडे ।

से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे जहण्णेण एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा जाव उक्कोसेण पंच मासं विहरइ ।

से तं पंचमा उवासग-पडिमा । (५)

अब **पांचवीं उपासक प्रतिमा** का वर्णन करते हैं—

वह सर्वधर्मरुचिवाला यावत् पूर्वोक्त चारों प्रतिमाओं का यथावत् अनुपालन करता है । वह नियम से बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, पाप-विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवासों का सम्यक् अनुपालन करता है । वह नियमतः सामायिक और देशावकाशिक व्रत का यथासूत्र, यथाकल्प, यथातथ्य, यथामार्ग काय से सम्यक् प्रकार स्पर्श कर, पालन कर, शोधन, कीर्तन करता हुआ जिन आज्ञा के अनुसार परिपालन करता है । वह चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमासी तिथियों मे परिपूर्ण पौषध का पालन करता है । वह स्नान नहीं करता, वह प्रकाश-भोजी है, अर्थात् रात्रि में नहीं खाता, किन्तु दिन में ही भोजन करता है, वह मुकुलीकृत रहता है अर्थात् धोती की लांग नहीं लगाता । दिन में ब्रह्मचर्य का पालन करता है और रात्रि में मैथुन सेवन का परिणाम करता है, वह इस प्रकार के आचरण से विचरता हुआ जघन्य से एक दिन, दो दिन या तीन दिन से लगाकर उत्कृष्ट पांच मास तक इस प्रतिमा का पालन करता है । (उसके पश्चात् वह छठी प्रतिमा को स्वीकार करता है ।)

विशेषार्थ—इस प्रतिमा का जो 'यथासूत्र' आदि पदों से पालन करने का विधान किया गया है, उनका स्पष्ट अर्थ इस प्रकार है—

१. यथासूत्र—आगम-सूत्रों में कहे गये प्रकार से पालन करना।
२. यथाकल्प—शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार पालन करना।
३. यथातथ्य—दर्शन, ज्ञान, चारित्र की जैसे वृद्धि हो, उस प्रकार से पालन करना।
४. यथामार्ग—जिस प्रकार से मोक्षमार्ग की विराधना न हो उस प्रकार से पालन करना।
५. यथासम्यक्—आर्त्त-रौद्रभाव से रहित होकर धर्मध्यानपूर्वक पालन करना।
६. काएण फासित्ता—काय से स्पर्श करते हुए पालन करना, केवल विचारों से नहीं।
७. सोहित्ता—अतिचारों का शोधन करते हुए पालन करना।
८. तीरित्ता—नियमपूर्वक पालन करके उसके पार पहुँचना।
९. पूरित्ता—पूर्ण नियमों का पालन करना।
१०. किट्टित्ता—व्रत के गुण-गान करते हुए पालन करना।
११. आणाए अणुपालित्ता—आचार्यों की आज्ञा के अनुसार पालन करना।

यह पाँचवीं उपासक प्रतिमा है।

उक्त सर्व पदों का सार यही है कि त्रियोग की शुद्धिपूर्वक अति श्रद्धा के साथ इस प्रतिमा को आगमोक्त रीति से पालन करना चाहिए।

सूत्र २२

(६) अहावरा छट्ठा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ।

जाव—से णं एगराइयं उवासग-पडिमं सम्मं अणुपालित्ता भवइ।

से णं असिणाणए, वियडभोई, मउलिकडे, दिया वा राओ वा बंभयारी, सचित्ताहारे से अपरिण्णाए भवइ।

से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे-

जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा जाव उक्कोसेणं छम्मासं विहरेज्जा।

से तं छट्ठा उवासग-पडिमा। (६)

अब **छठी प्रतिमा** का स्वरूप-निरूपण करते हैं—

वह सर्वधर्मरुचि वाला होता है, यावत् वह एक रात्रिक उपासक प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन करता है, वह स्नान नहीं करता, दिन में भोजन करता है, धोती की लाँग नहीं लगाता, दिन में और रात्रि में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। किन्तु वह प्रतिज्ञापूर्वक सचित्त आहार का परित्यागी नहीं होता है। इस प्रकार के विहार से विचरता हुआ वह जघन्य से एक दिन, दो दिन या तीन दिन यावत् उत्कृष्टतः छह मास तक सूत्रोक्त मार्गानुसार इस प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन करता है। (तत्पश्चात् सातवीं प्रतिमा को स्वीकार करता है।)

यह छठी उपासक प्रतिमा है।

सूत्र २३

(७) अहावरा सत्तमा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवति।

जाव—राओवरायं वा बंभयारी सचित्ताहारे से परिण्णाए भवति।

आरंभे से अपरिण्णाए भवति।

से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे-

जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा जाव उक्कोसेणं सत्तमासे विहरेज्जा।

से तं सत्तमा उवासग-पडिमा। (७)

अब **सातवीं उपासक प्रतिमा** का निरूपण करते हैं।

वह सर्वधर्मरुचि वाला होता है, यावत् वह दिन और रात में सदैव ब्रह्मचारी रहता है, वह प्रतिज्ञापूर्वक सचित्ताहार का परित्यागी होता है, वह गृह-आरम्भ का अपरित्यागी होता है अर्थात् व्यापार आदि आरम्भों को उत्तरोत्तर कम करते हुए भी सर्वथा त्यागी नहीं होता। इस प्रकार के विहार से विचरता हुआ वह जघन्य से एक दिन, दो दिन या तीन दिन से लगाकर उत्कृष्टतः सात मास तक सूत्रोक्त मार्गानुसार इस प्रतिमा का पालन करता है। (तत्पश्चात् वह आठवीं प्रतिमा को स्वीकार करता है।)

यह सातवीं उपासक प्रतिमा है।

सूत्र २४

(८) अहावरा अट्ठमा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवति ।

जाव—राओवरायं बंभयारी । सचित्ताहारे से परिण्णाए भवइ ।

आरम्भे से परिण्णाए भवइ । पेसारंभे अपरिण्णाए भवइ ।

से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे-

जाव—जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा जाव-उक्कोसेणं अट्ठमासे विहरेज्जा ।

से तं अट्ठमा उवासग-पडिमा । (८)

अब आठवीं उपासक प्रतिमा का निरूपण करते हैं—

वह सर्वधर्म रुचिवाला होता है, यावत् वह दिन और रात में पूर्ण ब्रह्मचारी रहता है, सचित्ताहार का परित्यागी होता है, वह घर के सर्व आरम्भों का परित्यागी होता है, किन्तु दूसरों से आरम्भ कराने का परित्यागी नहीं होता । इस प्रकार के विहार से विचरता हुआ वह जघन्य से एक दिन, दो दिन या तीन दिन यावत् उत्कृष्टतः आठ मास तक सूत्रोक्त मार्गानुसार इस प्रतिमा का पालन करता है । (तत्पश्चात् वह नवमी प्रतिमा को स्वीकार करता है ।)

यह आठवीं उपासक प्रतिमा है ।

सूत्र २५

(९) अहावरा नवमा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ ।

जाव—राओवरायं बंभयारी, सचित्ताहारे से परिण्णाए भवइ ।

आरंभे से परिण्णाए भवइ । पेसारंभे से परिण्णाए भवइ ।

उद्दिट्ठ-भत्ते से अपरिण्णाए भवइ ।

से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे-

जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा-जाव-उक्को[illegible] [illegible] विहरेज्जा ।

से तं नवमा उवासग-पडिमा । (९)

भक्त अर्थात् अपने निमित्त से बनाये गये भोजन के खाने का परित्यागी नहीं होता है। इस प्रकार के विहार से विचरता हुआ वह जघन्य से एक दिन, दो दिन या तीन दिन यावत् उत्कृष्टतः नौ मास तक सूत्रोक्त मार्गानुसार इस प्रतिमा का पालन करता है। (तत्पश्चात् वह दशवीं प्रतिमा को स्वीकार करता है।)

यह नवमी उपासक प्रतिमा है।

सूत्र २६

(१०) अहावरा दसमा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ।

जाव—उद्दिट्ठ-भत्ते से परिण्णाए भवइ।

से णं खुरमुंडए वा सिहा-धारए वा तस्स णं आभट्ठस्स समाभट्ठस्स वा कप्पंति दुवे भासाओ भासित्तए,

जहा—जाणं वा जाणं,
अजाणं वा णो जाणं।

से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे-
जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा-जाव-
उक्कोसेण दस मासे विहरेज्जा।

से तं दसमा उवासग-पडिमा। (१०)

अब दशवीं उपासक प्रतिमा का निरूपण करते है—

वह सर्वधर्मरुचिवाला होता है, (पूर्वोक्त सर्व व्रतों का धारक होता है) तथा उद्दिष्ट भक्त का भी परित्यागी होता है, वह शिर के बालों का क्षुरासे मुंडन करा देता है, किन्तु शिखा (चोटी) को धारण करता है, किसी के द्वारा एक वार या अनेक वार पूछे जाने पर उसे दो भाषाएँ बोलना कल्पती है। यथा—यदि जानता हो, तो कहे—'मैं जानता हूँ', यदि नहीं जानता हो तो कहे—मैं नहीं जानता हूँ।' इस प्रकार के विहार से विचरता हुआ वह जघन्य से एक दिन, दो दिन या तीन दिन, यावत् उत्कृष्टतः दश मास तक सूत्रोक्त मार्गानुसार इस प्रतिमा का पालन करता है। (इसके पश्चात् वह ग्यारहवीं प्रतिमा को स्वीकार करता है।)

यह दशवीं उपासक प्रतिमा है।

सूत्र २७

(११) अहावरा एकादसमा उवासग-पडिमा—

सव्व-धम्म-रुई यावि भवइ।

जाव—उद्दिट्ठ-भत्तं से परिण्णाए भवइ।

से णं खुरमुंडए, वा लुंचसिरए वा, गहियायार-भंडग-नेवत्थे।

जारिसे समणाणं निग्गंथाणं धम्मे पण्णत्ते,

तं सम्मं काएणं फासेमाणे, पालेमाणे, पुरओ जुगमायाए पेहमाणे, दट्ठूण तसे पाणे उद्धट्टु पाए रीएज्जा, साहट्टु पाए रीएज्जा, तिरिच्छं वा पायं कट्टु रीएज्जा सति परक्कमे संजयामेव परिक्कमेज्जा, नो उज्जुयं गच्छेज्जा।

केवलं से नायए पेज्जबंधणे अवोच्छिन्ने भवइ।

एवं से कप्पति नाय-विहिं एत्तए।

अब ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा का निरूपण करते हैं—

वह सर्वधर्मरुचिवाला होता है, यावत् (पूर्वोक्त सर्वव्रतों का परिपालक होता है) उद्दिष्टभक्त का परित्यागी होता है। वह क्षुरा से सिर का मुंडन कराता है, अथवा केशों का लुंचन करता है, वह साधु का आचार और भाण्ड (पात्र) उपकरण ग्रहण कर जैसा श्रमण निर्ग्रन्थों का वेष होता है वैसा वेष धारण कर उनके लिए प्ररूपित अनगार धर्म का सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श करता और पालन करता हुआ विचरता है, चलते समय युग-प्रमाण (चार हाथ) भूमि को देखता हुआ चलता है, त्रस प्राणियों को देखकर उनकी रक्षा के लिए अपने पैर उठा लेता है, उनको संकुचित कर चलता है, अथवा तिरछे पैर रखकर चलता है। (यदि मार्ग में त्रस जीव अधिक हों और) दूसरा मार्ग विद्यमान हो तो (जीव-व्याप्त मार्ग को छोड़कर) उस मार्ग पर चलता है, वह पूरी यतना के साथ चलता है, किन्तु बिना देखे-भाले ऋजु (सीधा) नहीं चलता है। केवल ज्ञाति-वर्ग से उसके प्रेम-बन्धन का विच्छेद नहीं होता है, अतः उसे ज्ञाति के लोगों में भिक्षा-वृत्ति के लिए जाना कल्पता है, अर्थात् सगे-सम्बन्धियों में गोचरी कर सकता है।

सूत्र २८

तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे,

कप्पति से चाउलोदणे पडिग्गहित्तए,

नो से कप्पति भिलिंगसूवे पडिग्गहित्तए।

तत्थ णं से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंग-सूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे, कप्पति से भिलिंगसूवे पडिग्गहित्तए, नो कप्पति चाउलोदणे पडिग्गहित्तए।

तत्थ णं से पुव्वागमणेणं दो वि पुव्वाउत्ताइं कप्पति दो वि पडिग्गहित्तए।

तत्थ णं से पुव्वागमणेणं दो वि पच्छाउत्ताइं,

णो से कप्पति दो वि पडिग्गहित्तए।

जे तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते, से कप्पति पडिग्गहित्तए।

जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते, से णो कप्पति पडिग्गहित्तए।

स्वजन-सम्बन्धी के घर पहुंचने से पूर्व चावल पके हों और भिलिंगसूप (मूंग आदि की दाल) न पकी हो तो उसे चावल का भात लेना कल्पता है, किन्तु भिलिंगसूप लेना नहीं कल्पता है। यदि वहाँ पर उसके आगमन से पूर्व भिलिंगसूप पका हो और चावलों का भात पीछे पकाया जावे तो उसे भिलिंगसूप लेना कल्पता है, चावलों का भात लेना नहीं कल्पता है। यदि वहाँ पर उसके आगमन से पूर्व दोनों ही पूर्व में पके हुए हों तो दोनों को लेना कल्पता है। और यदि उसके आगमन से पूर्व दोनों ही पकाये हुए नहीं है किन्तु पीछे पकाये जावें तो दोनों को लेना उसे नहीं कल्पता है। उक्त कथन का सार यह है कि उसके आगमन के पूर्व जो पदार्थ पका हुआ हो, उसे लेना कल्पता है और जो पदार्थ उसके आगमन से पीछे बनाया गया है, उसे लेना नहीं कल्पता है।

सूत्र २९

तस्स णं गाहावइ-कुलं पिंडवाय-पडियाए अणुप्पविट्ठस्स कप्पति एवं वदित्तए :—

"समणोवासगस्स पडिमापडिवन्नस्स भिक्खं दलयह"

तं चेव एयारूवेण विहारेण विहरमाणं केइ पासित्ता वदिज्जा—

"केइ आउसो! तुमं? वत्तव्वं सिया"

"समणोवासए पडिमा-पडिवण्णए अहमंसी" ति वत्तव्वं सिया।

से णं एयारूवेणं विहारेण विहरमाणे,

जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा-जाव-

उक्कोसेण एक्कारसमासे विहरेज्जा।

से तं एकादसमा उवासग-पडिमा। (११)

जब वह श्रमणभूत उपासक गृहपति के कुल (घर) में पिण्डपात (भक्त-पान) की प्रतिज्ञा से प्रविष्ट हो तब उसे इस प्रकार बोलना योग्य है—प्रतिमा-

तत्थ णं से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंग-सूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे, कप्पति से भिलिंगसूवे पडिग्गहित्तए, नो कप्पति चाउलोदणे पडिग्गहित्तए।

तत्थ णं से पुव्वागमणेणं दो वि पुव्वाउत्ताइं कप्पति दो वि पडिग्गहित्तए।

तत्थ णं से पुव्वागमणेणं दो वि पच्छाउत्ताइं,

णो से कप्पति दो वि पडिग्गहित्तए।

जे तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते, से कप्पति पडिग्गहित्तए।

जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते, से णो कप्पति पडिग्गहित्तए।

स्वजन-सम्बन्धी के घर पहुंचने से पूर्व चावल पके हों और भिलिंगसूप (मूंग आदि की दाल) न पकी हो तो उसे चावल का भात लेना कल्पता है, किन्तु भिलिंगसूप लेना नहीं कल्पता है। यदि वहाँ पर उसके आगमन से पूर्व भिलिंगसूप पका हो और चावलों का भात पीछे पकाया जावे तो उसे भिलिंगसूप लेना कल्पता है, चावलों का भात लेना नहीं कल्पता है। यदि वहाँ पर उसके आगमन से पूर्व दोनों ही पूर्व में पके हुए हों तो दोनों को लेना कल्पता है। और यदि उसके आगमन से पूर्व दोनों ही पकाये हुए नहीं है किन्तु पीछे पकाये जावें तो दोनों को लेना उसे नहीं कल्पता है। उक्त कथन का सार यह है कि उसके आगमन के पूर्व जो पदार्थ पका हुआ हो, उसे लेना कल्पता है और जो पदार्थ उसके आगमन से पीछे बनाया गया है, उसे लेना नहीं कल्पता है।

सूत्र २९

तस्स णं गाहावइ-कुलं पिंडवाय-पडियाए अणुप्पविट्ठस्स कप्पति एवं वदित्तए :—

"समणोवासगस्स पडिमापडिवन्नस्स भिक्खं दलयह"

तं चेव एयारूवेण विहारेण विहरमाणं केइ पासित्ता वदिज्जा—

"केइ आउसो! तुमं? वत्तव्वं सिया"

"समणोवासए पडिमा-पडिवण्णए अहमंसी" ति वत्तव्वं सिया।

से णं एयारूवेणं विहारेण विहरमाणे,

जहण्णेणं एगाहं वा दुआहं वा तिआहं वा-जाव-

उक्कोसेण एक्कारसमासे विहरेज्जा।

से तं एकादसमा उवासग-पडिमा। (११)

जब वह श्रमणभूत उपासक गृहपति के कुल (घर) में पिण्डपात (भक्त-पान) की प्रतिज्ञा से प्रविष्ट हो तब उसे इस प्रकार बोलना योग्य है—प्रतिमा-

उत्तर—स्थविर भगवन्तों ने वे बारह भिक्षु-प्रतिमाएँ ये कही हैं, यथा—

१. मासिकी भिक्षु-प्रतिमा
२. द्विमासिकी " "
३. त्रिमासिकी " "
४. चतुर्मासिकी " "
५. पंचमासिकी " "
६. षण्मासिकी " "
७. सप्तमासिकी " "
८. प्रथमा सप्त-रात्रिदिवा " "
९. द्वितीया " " "
१०. तृतीया " " " "
११. अहोरात्रिकी भिक्षु-प्रतिमा
१२. एकरात्रिकी " "

सूत्र ३

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं वोसट्ठकाए चियत्त-देहे जे केइ उवसग्गा उववज्जंति, तं जहा—

दिव्वा वा, माणुसा वा, तिरिक्खजोणिया वा
ते उप्पण्णे सम्मं सहति, खमति, तितिक्खति, अहियासेति।

शारीरिक सुषमा एवं ममत्व भाव से रहित मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार के (प्रतिमा-आराधन काल में) दिव्य (देव-सम्बन्धी) मानुषिक या तिर्यग्योनिक जितने उपसर्ग आते हैं उन्हें वह सम्यक् प्रकार से सहन करता है, उपसर्ग करने वाले को क्षमा करता है, दैन्य भाव छोड़कर वीरता धारण करता है और शारीरिक क्षमता से उन्हें झेलता है।

सूत्र ४

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पति एगा दत्ती भोयणस्स पडिगाहित्तए, एगा पाणगस्स।

अण्णायउञ्छं, सुद्धोवहडं,
निज्जूहित्ता बहवे दुप्पय-चउप्पय-समण-माहण-अतिहि-किविण-वणीमगे
कप्पइ से एगस्स भुंजमाणस्स पडिगाहित्तए।

णो दुण्हं, णो तिण्हं, णो चउण्हं, णो पंचण्हं, णो गुव्विणीए, णो बाल-वच्छाए, णो दारगं पेज्जमाणीए,

णो से कप्पई अंतो एलुयस्स दो वि पाए साहट्टु दलमाणीए,
णो वहिं एलुयस्स दो वि पाए साहट्टु दलमाणीए,
अहं पुण एवं जाणेज्जा, एगं पादं अंतो किच्चा, एगं पादं बहिं किच्चा एलुयं विक्खंभइत्ता एवं दलयति एवं से कप्पति पडिगाहित्तए ;
एवं से नो दलयति, एवं से नो कप्पति, पडिगाहित्तए ।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को एक दत्ति भोजन की ओर एक दत्ति पानी की लेना कल्पता है—वह भी अज्ञातकुल से अल्पमात्रा में दूसरों के लिए बना हुआ, अनेक द्विपद, चतुष्पद, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और वनीपक (भिखारी) आदि के भिक्षा लेकर चले जाने के बाद ग्रहण करना कल्पता है।

जहाँ एक व्यक्ति भोजन कर रहा हो वहाँ से आहार-पानी की दत्ति लेना कल्पता है किन्तु दो, तीन, चार या पांच व्यक्ति एक साथ बैठकर भोजन करते हों वहां से लेना नहीं कल्पता है।

गर्भिणी, बालवत्सा और बच्चे को दूध पिलाती हुई से आहार-पानी की दत्ति लेना नहीं कल्पता है।

जिसके दोनों पैर देहली के अन्दर हों या दोनों पैर देहली के बाहर हों ऐसी स्त्री से आहार पानी की दत्ति लेना नहीं कल्पता है, किन्तु यह ज्ञात हो जाय कि एक पैर देहली के अन्दर है और एक पैर बाहर है तो उसके हाथ से लेना कल्पता है।

यदि वह न देना चाहे तो उसके हाथ से लेना नहीं कल्पता है।

विशेषार्थ—प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार के पात्र में दाता एक अखण्डधारा मे जितना भक्त या पानी दे उतना भक्त-पान "एक दत्ती" कहा जाता है।

सूत्र ५

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स तओ गोयर-काला पण्णत्ता, तं जहा—

१ आदिमे, २ मज्झे, ३ चरिमे ।
१ आदिं चरेज्जा, नो मज्झे चरेज्जा, णो चरमे चरेज्जा ।
२ मज्झे चरिज्जा, नो आदिं चरिज्जा, नो चरिमे चरेज्जा ।
३ चरिमे चरेज्जा, नो आदिं चरेज्जा, नो मज्झिमे चरेज्जा ।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार के तीन गोचरकाल (आहार लाने के समय) कहे गए हैं, यथा—

१ आदिम—दिन का प्रथम भाग,

२ मध्य—मध्याह्न,

३ अन्तिम—दिन का अन्तिम भाग।

१ मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न जो अनगार यदि आदिम गोचरकाल में भिक्षाचर्या के लिए जावे तो मध्य और अन्तिम गोचर काल में न जावे।

२ मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार यदि मध्य गोचरकाल में भिक्षा-चर्या के लिए जावें तो आदि और अन्तिम गोचर काल में न जावे।

३ मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार यदि अन्तिम गोचरकाल में भिक्षाचर्या के लिए जावे तो आदि और मध्य गोचरकाल में न जावे।

सूत्र ६

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, तं जहा—

१ पेड़ा[१], २ अद्धपेडा, ३ गोमुत्तिया,
४ पतंगवीहिया, ५ संबुक्कावट्टा, ६ गंतुपच्चागया।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार की छः प्रकार की गोचरी कही गई है, यथा—

१ पेटा, २ अर्धपेटा, ३ गोमूत्रिका,
४ पतंग-वीथिका, ५ शम्बूकावर्ता, ६ गत्वा प्रत्यागता।

विशेषार्थ—१ पेटी के समान चार कोने वाली वीथी (गली) में गोचरी करने को "पेटा गोचरी" कहते हैं।

२ दो कोने वाली गली में गोचरी करने को "अर्धपेटा गोचरी" कहते हैं।

३ चलते हुए बैल के पेशाब करने पर जैसी रेखाएँ होती हैं उसी प्रकार की वक्र गलियों में गोचरी करने को "गोमूत्रिका गोचरी" कहते हैं।

---

१ पेला

४ जिस प्रकार "पतंगा" एक स्थान से उछलकर दूसरे स्थान पर बैठता है उसी प्रकार एक घर से गोचरी लेकर बीच में चार-पांच घर छोड़-छोड़कर भिक्षा लेने को "पतंग वीथिका गोचरी" कहते हैं।

५ "शम्बूक" शंख को कहते हैं। वह दक्षिणावर्त और वामावर्त दो प्रकार का होता है।

इसी प्रकार किसी गली में दक्षिण की ओर से भ्रमण करते हुए उत्तर की ओर जाकर गोचरी लेना तथा किसी गली में उत्तर की ओर से भ्रमण करते हुए दक्षिण की ओर जाकर गोचरी लेना "शम्बूकावर्त गोचरी" कही जाती है।

६ वीथी के अन्तिम घर तक जाकर भिक्षा ग्रहण करते हुए वीथी-मुख तक आना "गत्वा प्रत्यागता गोचरी" कही जाती है।

इन छः प्रकार की गोचरियों में से किसी एक प्रकार की गोचरी करने का अभिग्रह लेकर प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को भिक्षा लेना कल्पता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि एक दिन में एक ही प्रकार की गोचरी करने का अभिग्रह करके भिक्षा लेने का विधान है।

सूत्र ७

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स जत्थ णं केइ जाणइ गामंसि वा-जाव-मडंबंसि वा कप्पइ से तत्थ एगराइयं वसित्तए।

जत्थ णं केइ न जाणइ, कप्पइ से तत्थ एग-रायं वा, दु-रायं वा वसित्तए।

नो से कप्पइ एग-रायाओ वा, दु-रायाओ वा परं वत्थए।

जे तत्थ एग-रायाओ वा दु-रायाओ वा परं वसति, से संतरा छेदे वा परिहारे वा।

जिस ग्राम यावत् मडम्ब में मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को यदि कोई जानता हो तो उसे वहाँ एक रात वसना कल्पता है, यदि कोई नहीं जानता हो तो उसे वहाँ एक या दो रात वसना कल्पता है, किन्तु एक या दो रात से अधिक वसे तो वह उतने दिन की दीक्षा के छेद या परिहार तप का पात्र होता है।

सूत्र ८

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स कप्पति चत्तारि भासाओ भासि-त्तए, तं जहा—

१ जायणी, २ पुच्छणी, ३ अणुण्णवणी, ४ पुट्ठस्स वागरणी।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को चार भाषाएँ बोलना कल्पता है, यथा—

१ याचनी, २ पृच्छनी, ३ अनुज्ञापनी और पृष्ठ-व्याकरणी।

विशेषार्थ—१ दूसरे से आहार, वस्त्र, पात्र आदि मांगने के लिए बोलना "याचनी" भाषा है।

२ शंका का समाधान करने के लिए गुरु आदि से प्रश्न करना "पृच्छनी" भाषा है।

अथवा-किसी व्यक्ति से मार्ग पूछना "पृच्छनी" भाषा है।

३ गुरु आदि से गोचरी आदि की आज्ञा लेने के लिए बोलना, अथवा शय्या-तर (गृहस्वामी) से स्थानादि की आज्ञा लेने के लिए बोलना "अनुज्ञापनी" भाषा है।

४ किसी व्यक्ति द्वारा प्रश्न किए जाने पर उत्तर देने के लिए बोलना "पृष्ठ-व्याकरणी" भाषा है।

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को इन चार भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा बोलना नहीं कल्पता है।

सूत्र ९

मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स कप्पइ **तओ उवस्सया** पडिलेहित्तए, तं जहा—

१ अहे आराम-गिहंसि वा

२ अहे वियड-गिहंसि वा

३ अहे रुक्खमूल-गिहंसि वा

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयों का प्रतिलेखन करना कल्पता है, यथा—

१ अधः आरामगृह = उद्यान में अवस्थित गृह,

२ अधः विवृतगृह = चारों ओर से अनाच्छादित गृह,

३ अधः वृक्षमूलगृह = वृक्ष के नीचे या वृक्ष के नीचे बना गृह।

सूत्र १०

मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स कप्पइ तओ उवस्सया अणुण्णवेत्तए, तं जहा—

१ अहे आराम-गिहं वा

२ अहे वियड-गिहं वा

३ अहे रुक्खमूल-गिहं वा

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयों की आज्ञा लेना कल्पता है, यथा—

१ अधः आरामगृह,

२ अधः विवृतगृह,

३ अधः वृक्षमूलगृह ।

सूत्र ११

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स कप्पति तओ उवस्सया उवाइणित्तए, तं चेव ।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयों में ठहरना कल्पता है, यथा—

पूर्ववत् (सूत्र ९ और १० के समान ।)

सूत्र १२

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स कप्पति तओ संथारगा पडिलेहित्तए, तं जहा—

१ पुढवि-सिलं वा, २ कट्ठ-सिलं वा, ३ अहा-संथडमेव वा ।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के संस्तारकों (शय्या आसनों) का प्रतिलेखन करना कल्पता है, यथा—

१ पृथ्वी शिला = पत्थर की बनी हुई शय्या,

२ काष्ठ शिला = लकड़ी का बना हुआ पाट,

३ यथासंसृत = तृण-पराल आदि जहाँ पर पहले से बिछा हुआ हो ।

सूत्र १३

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स कप्पति तओ संथारगा अणुण्णवेत्तए, तं चेव।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के संस्तारकों की आज्ञा लेना कल्पता है, यथा—

पूर्ववत् (सूत्र १२ के समान)

सूत्र १४

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स कप्पति तओ संथारगा उवाइणित्तए, तं चेव।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के संस्तारक ग्रहण करना कल्पता है यथा—

पूर्ववत् (सूत्र १२ के समान)।

सूत्र १५

मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स इत्थी वा, पुरिसे वा उवस्सयं उवागच्छेज्जा।

णो से कप्पति तं पडुच्च निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार के उपाश्रय में यदि कोई (असदाचारी) स्त्री या पुरुष आकर अनाचार का आचरण करें तो उन्हें देखकर उसे उपाश्रय से निष्क्रमण या प्रवेश करना नहीं कल्पता है।

विशेषार्थ—जिस स्थान पर प्रतिमाधारी मुनि ठहरा हुआ हो वहाँ दिन या रात में दुराचारी स्त्री और पुरुष आकर दुराचार का सेवन करें तो उन्हें देखकर मुनि को उपाश्रय से बाहर नहीं जाना चाहिए, वल्कि आत्म-चिन्तन या स्वाध्याय में रत रहना चाहिए।

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार यदि उपाश्रय से बाहर गोचरी या आतापन-सेवन आदि के लिए कहीं गया हो और पीछे से उस उपाश्रय में स्त्री और पुरुष आकर बैठ जावें या अनाचार का आचरण करते हुए दिखाई दें तो अनगार को उस उपाश्रय में प्रवेश करना नहीं कल्पता है।

सूत्र १६

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स केइ उवस्सयं अगणिकाएणं झामेज्जा,

णो से कप्पति तं पडुच्च निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

तत्थ णं केइ बाहाए गहाय आगसेज्जा,

नो से कप्पति तं अवलंबित्तए वा पलंबित्तए वा, कप्पति अहारियं रियत्तए।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार जिस उपाश्रय में स्थित हो उसमें यदि किसी प्रकार अग्नि लग जावे या कोई लगादे तो उस अग्नि-भय से अनगार को उपाश्रय से बाहर निकलना नहीं कल्पता है।

यदि अनगार उपाश्रय से बाहर हो और उपाश्रय किसी प्रकार अग्नि से प्रदीप्त हो जावे तो अनगार को उसमें प्रवेश करना भी नहीं कल्पता है।

प्रदीप्त उपाश्रय में रहे हुए अनगार को यदि कोई भुजा पकड़ कर बाहर निकालना चाहे तो वह उसका सहारा लेकर न निकले, किन्तु शान्तभाव से विवेकपूर्वक चलते हुए उसे बाहर निकलना कल्पता है।

सूत्र १७

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स पायंसि खाणू वा, कंटए वा, हीरए वा, सक्करए वा अणुपवेसेज्जा,

नो से कप्पइ नीहरित्तए वा, विसोहित्तए वा,

कप्पति से अहारियं रियत्तए।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार के पैर में यदि तीक्ष्ण ठूंठ, कंटक, हीरक (तीखे काँच आदि) कंकर आदि लग जावे तो उसे निकालना या विशुद्धि (उपचार) करना नहीं कल्पता है, किन्तु उसे ईर्यासमिति पूर्वक चलते रहना कल्पता है।

सूत्र १८

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स

जाव—अच्छिंसि पाणाणि वा, बीयाणि वा, रए वा परियावज्जेज्जा,

नो से कप्पति नीहरित्तए वा विसोहित्तए वा;

कप्पति से अहारियं रियत्तए।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार के आंख में मच्छर आदि सूक्ष्म जन्तु, वीज (फूस, तिनका आदि) रज आदि गिर जावे तो उसे निकालना या विशुद्धि (उपचार) करना नहीं कल्पता है, किन्तु उसे ईर्यासमिति पूर्वक चलते रहना कल्पता है।

सूत्र १९

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स जत्थेव सूरिए अत्थमेज्जा तत्थ एव जलंसि वा, थलंसि वा, दुग्गंसि वा, निण्णंसि वा, पव्वयंसि वा, विसमंसि वा, गड्डाए वा, दरीए वा,

कप्पति से तं रयणी तत्थेव उवाइणावित्तए ;
नो से कप्पति पदमवि गमित्तए।
कप्पति से कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव—जलंते
पाइणाभिमुहस्स वा, दाहिणाभिमुहस्स वा,
पडीणाभिमुहस्स वा, उत्तराभिमुहस्स वा,
अहारियं रियत्तए।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को विहार करते हुए जहाँ सूर्यास्त हो जाय उसे वहीं रहना चाहिए—

चाहे वहाँ जल हो या स्थल हो,
दुर्गम मार्ग हो या निम्न (नीचा) मार्ग हो,
पर्वत हो या विपममार्ग हो,
गर्त हो या गुफा हो,
पूरी रात वहीं रहना चाहिए, अर्थात् एक कदम भी आगे नहीं वढ़ना चाहिए।

किन्तु प्रातःकालीन प्रभा प्रगट होने पर यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर उसे ईर्या-समिति पूर्वक गमन करना कल्पता है।

विशेपार्थ—इस सूत्र में यह कहा गया है कि "विहार करते हुए जहाँ सूर्यास्त हो जाय वहीं भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को ठहर जाना चाहिए, चाहे कैसा भी मार्ग क्यों न हो" !

इस सन्दर्भ में सर्व प्रथम "जलंसि" पद दिया गया है। यह प्राकृत भापा में जल शब्द की सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप है। इसका अर्थ है, "जल में"।

श्रमणचर्या का यह सामान्य नियम है कि श्रमण सदा स्थल पर चले, जल में नहीं। अतः इस सूत्र में "जलंसि" पद देने का क्या अभिप्राय है—यह प्रश्न उचित है।

प्रस्तुत सूत्र की संस्कृत वृत्ति में इसका समाधान इस प्रकार दिया गया है— **"अत्र जल शब्देन नद्यादिजलं (जलाशयं) न गृह्यते, किन्तु दिवसस्य यामाऽवसान एवात्र जल शब्द वाच्यो भवतीति समये रीतिः"**। अर्थ—यहाँ पर जल शब्द से नदी आदि का जल ग्रहण नहीं किया गया है, किन्तु दिन के तीसरे प्रहर का अवसान ही यहाँ पर जल शब्द का वाच्यार्थ है। यह समय (आगम) की रीति है।"

किन्तु सूत्र में—**"जत्थेव सूरिए अत्थमेज्जा"** ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। इसलिए वृत्तिकार द्वारा बताया गया अर्थ सूत्र-संगत प्रतीत नहीं होता।

इसी सूत्र की चूर्णी में "जलंसि" का अर्थ इस प्रकार किया गया है— **"जत्थ चउत्थि पोरिसिं पत्तो सूरे अत्थं च भवति, जलं अब्भागवासियं, जहिं उस्सा पडंति···"** दसा० चूर्णि...पत्र ५१-ए॥ अर्थ—चौथे प्रहर में जब सूर्य अस्त होने लगे उस समय जल बरसने लगे या ओस पड़ने लगे तब भिक्षु प्रतिमाधारी अनगार को वहीं ठहर जाना चाहिए, एक कदम भी आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

चूर्णिकार का यह अर्थ सर्वथा प्रकरण-संगत प्रतीत होता है।

सूत्र २०

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स
णो से कप्पइ अणंतरहियाए पुढवीए निद्दाइत्तए वा पयलाइत्तए वा।
केवली बूया—"आदाणमेयं"।
से तत्थ निद्दायमाणे वा, पयलायमाणे वा हत्थेहिं भूमिं परामुसेज्जा।
अहाविहिमेव ठाणं ठाइत्तए, निक्खमित्तए।
उच्चार-पासवणेणं उब्बाहिज्जा, नो से कप्पति उगिण्हित्तए वा।
कप्पति से पुव्वपडिलेहिए थंडिले उच्चार-पासवणं परिठवित्तए।
तम्मेव उवस्सयं आगम्म अहाविहि ठाणं ठवित्तए।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को सचित्त पृथ्वी पर निद्रा लेना या ऊंघना नहीं कल्पता है ।

केवली भगवान ने सचित्त पृथ्वी पर नींद लेने या ऊंघने को कर्मबंध का कारण कहा है ।

वह अनगार सचित्त पृथ्वी पर नींद लेता हुआ या ऊंघता हुआ अपने हाथों से भूमि का स्पर्श करेगा (और उससे पृथ्वी काय के जीवों की हिंसा होगी) अतः उसे यथाविधि (सूत्रोक्तविधि) से निर्दोष स्थान पर ठहरना चाहिए या निष्क्रमण करना चाहिए ।

यदि अनगार को मल-मूत्र की बाधा हो जाए तो रोकना नहीं चाहिए, किन्तु पूर्व प्रतिलेखित भूमि पर त्याग करना चाहिए । और पुनः उसी उपाश्रय में आकर यथाविधि निर्दोष स्थान पर ठहरना चाहिए ।

सूत्र २१

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स-
नो कप्पति ससरक्खेणं काएणं गाहावइ-कुलं
भत्तए वा पाणए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ।
अह पुण एवं जाणेज्जा —
ससरक्खे से अत्ताए वा जल्लत्ताए वा मल्लत्ताए वा पंकत्ताए वा विद्धत्थे,
से कप्पति गाहावइ-कुलं भत्तए वा पाणए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को सचित्त रजयुक्त काय से गृहस्थों के गृह-समुदाय में भक्त-पान के लिए निष्क्रमण और प्रवेश करना नहीं कल्पता है ।

यदि यह ज्ञात हो जाये कि शरीर पर लगा हुआ सचित्त रज स्वेद, शरीर पर लगे हुए मेल या पंक (प्रस्वेद) से अचित्त हो गया है तो उसे गृहस्थों के गृह समुदाय में भक्त-पान के लिए निष्क्रमण-प्रवेश करना कल्पता है ।

विशेषार्थ—प्रस्तुत सूत्र में "सचित्त रजयुक्त काय" का उल्लेख है—उसका अभिप्राय यह है कि भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार जिस उपाश्रय में ठहरा हुआ हो और उसके समीप ही किसी खान से मिट्टी खोदी जा रही हो तो वह सचित्त रज उड़कर अनगार के काय पर लग जाती है, अतः "सचित्त रज युक्त काय" से गोचरी के लिए घरों में जाने का यहाँ निषेध है, किन्तु शरीर पर पसीना वह रहा हो उस समय शरीर पर लगी हुई सचित्त रज अचित्त हो जाती है अथवा शरीर के मेल पर लगी हुई सचित्त रज भी अचित्त हो जाती है तब वह अनगार गोचरी के लिए गृहस्थों के घरों में आ जा सकता है ।

सूत्र २२

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स-

नो कप्पति सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा

हत्थाणि वा, पायाणि वा, दंताणि वा, अच्छीणि वा, मुहं वा, उच्छोलित्तए वा, पधोइत्तए वा,

नन्नत्थ लेवालेवेण वा भत्तमासेण वा।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को विकट शीतोदक या विकट उष्णोदक (अचित्त शीतल या उष्ण जल) से हाथ, पैर, दाँत, नेत्र या मुख एकबार धोना अथवा बार-बार धोना नहीं कल्पता है।

केवल मल-मूत्रादि से लिप्त शरीर के अवयव और भक्त-पानादि से लिप्त हाथ-मुँह को छोड़कर।

सूत्र २३

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स-

नो कप्पति आसस्स वा, हत्थिस्स वा, गोणस्स वा, महिसस्स वा, सीहस्स वा, वग्घस्स वा, वगस्स वा, दीवियस्स वा, अच्छस्स वा, तरच्छस्स वा, परा-सरस्स वा, सीयालस्स वा, विरालस्स वा, केकित्तियस्स वा, ससगस्स वा, चिक्खलस्स वा, सुणगस्स वा, कोलसुणगस्स वा, दुट्ठस्स वा आवयमाणस्स पयमवि पच्चोसक्कित्तए। अदुट्ठस्स आवयमाणस्स कप्पइ जुगमित्तं पच्चोसक्कित्तए।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार के सामने (विहार करते समय) अश्व, हस्ती, वृषभ, महिष, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया), द्वीपि (चीता), अक्ष (रींछ), तरक्ष (तेंदुआ), पराशर (वन्य पशु), शृगाल, विडाल, केकित्तक (सर्प), शशक चिक्खल (वन्य पशु), शुनक (श्वान), कोलशुनक (जंगली शूकर) आदि दुष्ट (हिंसक) प्राणी आ जाये तो उनसे भयभीत होकर एक पैर भी पीछे हटना नहीं कल्पता है।

यदि कोई दुष्टता रहित पशु (गाय, भैंस आदि) मार्ग में सामने आ जाए तो (उसे जाने देने के लिए) युग-परिमाण (चार हाथ) पीछे हटना कल्पता है।

सूत्र २४

मासियं णं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स-

कप्पति छायाओ "सीयं ति" नो उण्हं इयत्तए,

उण्हाओ "उण्हं ति" नो छायं इयत्तए।

जं जत्थ जया सिया तं तत्थ तया अहियासए।

मासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को—"यहाँ शीत अधिक है" ऐसा सोचकर छाया से धूप में तथा "यहाँ गर्मी अधिक है" ऐसा सोचकर धूप से छाया में जाना नहीं कल्पता है।

किन्तु जहाँ जैसा (शीत या उष्ण) हो वहाँ वैसे (शीत या उष्ण) को सहन करना चाहिए।

सूत्र २५

एवं[1] खलु मासियं भिक्खु-पडिमं।

अहासुत्तं, अहाकप्पं, अहामग्गं, अहातच्चं, सम्मं काएणं फासित्ता, पालित्ता, सोहित्ता, तीरित्ता, किट्टइत्ता, आराहित्ता, आणाए अणुपालित्ता भवइ। (१)

इस प्रकार (वह मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार) मासिकी भिक्षु-प्रतिमा को सूत्र, कल्प और मार्ग के अनुसार यथातथ्य सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर पालन कर (अतिचारों का) शोधन कर कीर्तन और आराधन कर जिनाज्ञा के अनुसार (विना किसी अन्तर या व्यवधान के) पालन करने वाला होता है।

एक मासिकी भिक्षु-प्रतिमा समाप्त।

सूत्र २६

दो-मासियं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स निच्चं वोसट्ठकाए,
तं चेव जाव दो दत्तीओ। (२)

शारीरिक सुषमा एवं ममत्वभाव से रहित द्विमासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को...यावत्[2] भक्त-पान की दो दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है और वह दो मास तक उस प्रतिमा का पालन करता है।

सूत्र २७

ति-मासियं तिण्णि दत्तीओ। (३)

त्रिमासिकी भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को भक्त-पान की तीन दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है और तीन मास तक वह उसका यथाविधि पालन करता है।

---

१ द० चूर्णौ एवं खलु एसा भिक्खुपडिमा।
२ दशा० ७, सूत्र ३ और ४ के समान।

सूत्र २८

चउ-मासियं चत्तारि दत्तीओ ।　　(४)

चतुर्मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को भक्त-पान की चार दत्तियां ग्रहण करना कल्पता है और चार मास तक वह उसका यथाविधि पालन करता है ।

सूत्र २९

पंच-मासियं पंच दत्तीओ ।　　(५)

पंचमासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को भक्त-पान की पाँच दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है और पांच मास तक वह उसका यथाविधि पालन करता है ।

सूत्र ३०

छ-मासियं छ दत्तीओ ।　　(६)

षण्मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को भक्त-पान की छः दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है और छः मास तक वह उसका यथाविधि पालन करता है ।

सूत्र ३१

सत्त-मासियं सत्त दत्तीओ ।　　(७)
जत्थ जत्तिया मासिया तत्थ तत्तिआ दत्तीओ ।

सप्तमासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को भक्त-पान की सात दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है और सात मास तक वह उसका यथाविधि पालन करता है ।[1] जो प्रतिमा जितने मासकी हो उसमें उतनी ही भक्त-पान की दत्तियां ग्रहण की जाती हैं ।

सूत्र ३२

पढमं सत्त-राइं-दियं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स-
अणगारस्स निच्चं वोसट्ठकाए जाव-अहियासेइ ।

---

[1] शेष वर्णन सूत्र ५ से सूत्र २५ तक के समान समझना चाहिए अर्थात् एकमासिकी भिक्षु-प्रतिमा के समान उक्त प्रतिमाओं का पालन किया जाता है ।

कप्पइ से चउत्थेणं भत्तेणं अपाणएणं बहिया गामस्स वा जाव —रायहाणिए वा उत्ताणस्स पासिल्लगस्स वा नेसिज्जयस्स वा ठाणं ठाइत्तए।

तत्थ से दिव्व-माणुस्स-तिरिक्खजोणिया उवसग्गा समुप्पज्जेज्जा,
ते णं उवसग्गा पयलिज्ज वा पवडेज्ज वा,
णो से कप्पइ पयलित्तए वा पवडित्तए वा।
तत्थ णं उच्चार-पासवणेणं उव्वाहिज्जा,
णो से कप्पइ उच्चार-पासवणं उगिण्हित्तए वा।

कप्पइ से पुव्व-पडिलेहियंसि थंडिलंसि उच्चार-पासवणं परिठवित्तए, अहाविहिमेव ठाणं ठाइत्तए।

एवं खलु पढमं सत्त-राइंदियं भिक्खु-पडिमं
अहासुयं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ। (८)

शारीरिक सुषमा एवं ममत्वभाव से रहित प्रथम सप्तरात्रिदिवा भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार...यावत्[1]...शारीरिक क्षमता से उन्हें झेलता है।

निर्जल चतुर्थभक्त (उपवास) के पश्चात् भक्त-पान ग्रहण करना कल्पता है।

ग्राम यावत्[2] राजधानी के बाहिर (उक्त-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को) उत्तानासन, पार्श्वासन या निषद्यासन, इन तीन आसनों में से किसी एक आसन से कायोत्सर्ग करके स्थित रहना चाहिए।

वहाँ (प्रतिमा आराधन काल में) यदि दिव्य, मानुषिक या तिर्यग्योनिक उपसर्ग हों और वे उपसर्ग उस अनगार को ध्यान से विचलित करें या पतित करें तो उसे विचलित होना या पतित होना नहीं कल्पता है।

यदि मल-मूत्र की बाधा उत्पन्न हो तो उसे रोकना नहीं कल्पता है, किन्तु पूर्व प्रतिलेखित भूमिपर मल-मूत्र त्यागना कल्पता है।

पुनः यथाविधि अपने स्थान पर आकर उसे कायोत्सर्ग कर स्थित रहना चाहिए।

इस प्रकार वह अनगार प्रथम सात दिन-रात की भिक्षु-प्रतिमा का यथासूत्र ....यावत्[3]...जिनाज्ञा के अनुसार (विना किसी अन्तर या व्यवधान के) पालन करने वाला होता है।

---

१ दशा० ७, सूत्र ३ के समान।
२ दशा० ७, सूत्र ७ का एक अंश।
३ दशा० ७, सूत्र २५ के समान।

सूत्र ३३

एवं दोच्चा सत्त-राइंदिया वि।

नवरं-दंडाइयस्स वा लगडसाइस्स वा उक्कुडुयस्स वा

ठाणं ठाइत्तए, सेसं तं चेव जाव अणुपालित्ता भवइ। (९)

इसी प्रकार दूसरी सात दिन-रात पर्यन्त पालन की जाने वाली भिक्षु-प्रतिमा का भी वर्णन है।

विशेष यह है कि इस प्रतिमा के आराधन-काल में दण्डासन, लकुटासन और उत्कुटुकासन से स्थित रहना चाहिए। शेष पूर्ववत् यावत्[1] जिनाज्ञा के अनुसार पालन करने वाला होता है।

सूत्र ३४

एवं तच्चा सत्त-राइंदिया वि।

नवरं—गोदोहियाए वा, वीरासणीयस्स वा, अंबखुज्जस्स वा, ठाणं ठाइत्तए, सेसं तं चेव जाव अणुपालित्ता भवइ। (१०)

इसी प्रकार तीसरी सात दिन-रात पर्यन्त पालन की जाने वाली भिक्षु-प्रतिमा का भी वर्णन है।

विशेष यह है कि इस प्रतिमा के आराधन-काल में गोदोहनिकासन, वीरासन और आम्रकुब्जासन से स्थित रहना चाहिए। शेष पूर्ववत् यावत् जिनाज्ञा के अनुसार पालन करने वाला होता है।

सूत्र ३५

एवं अहो-राइयावि।

नवरं-छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं, बहिया गामस्स वा जाव रायहाणिस्स वा ईसिं दो वि पाए साहट्टु वग्घारिय-पाणिस्स ठाणं ठाइत्तए।

सेसं तं चेव जाव अणुपालित्ता भवइ। (११)

इसी प्रकार अहोरात्रि की प्रतिमा का भी वर्णन है।

विशेष यह है कि निर्जल षष्ठ भक्त के पश्चात् भक्त-पान ग्रहण करना कल्पता है।

[1] दशा० ७, सूत्र २५ के समान।

ग्राम यावत् राजधानी के बाहिर दोनों पैरों को संकुचित कर और दोनों भुजाओं को जानु पर्यन्त लम्बी करके कायोत्सर्ग करना चाहिए।

शेष पूर्ववत् यावत्[1] जिनाज्ञा के अनुसार पालन करने वाला होता है।

सूत्र ३६

एग-राइयं भिक्खु-पडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स
निच्चं वोसट्ठ-काए णं जाव अहियासेइ।

कप्पइ से णं अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं बहिया गामस्स वा जाव राय-हाणिस्स वा ईसिं पब्भार-गएणं काएणं एग-पोग्गल-ट्ठिताए दिट्ठीए अणिमिस-नयणेहिं अहापणिहितेहिं गत्तेहिं सव्विंदिएहिं गुत्तेहिं—
दोवि पाए साहट्टु वग्घारियपाणिस्स ठाणं ठाइत्तए।
तत्थ से दिव्व-माणुस्स-तिरिक्खजोणिया जाव अहियासेइ।
से णं तत्थ उच्चार-पासवणेणं उव्वाहिज्जा,
नो से कप्पइ उच्चार-पासवणं उगिण्हित्तए।
कप्पइ से पुव्वपडिलेहियंसि थंडिलंसि—
उच्चारपासवणं परिट्ठवित्तए। अहाविहिमेव ठाणं ठाइत्तए।

शारीरिक सुषमा एवं ममत्व भाव से रहित एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार...यावत्...शारीरिक क्षमता से उन्हें झेलता है।

विशेष यह है कि निर्जल अष्टम भक्त के पश्चात् भक्त-पान ग्रहण करना कल्पता है।

ग्राम यावत् राजधानी के बाहिर (उक्त-प्रतिमा प्रतिपन्न अनगार को) शरीर थोड़ा-सा आगे की ओर झुकाकर, एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए अनिमिष नेत्रों से और निश्चल अंगों से सर्व इन्द्रियों को गुप्त रखता हुआ दोनों पैरों को संकुचित कर एवं दोनों भुजाओं को जानुपर्यन्त लम्बी करके कायोत्सर्ग से स्थित रहना चाहिए।

सूत्र ३७

एगराइयं भिक्खु-पडिमं सम्मं अणणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा अहियाए, असुभाए, अक्खमाए, अणिसेस्साए, अणणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—

---

१ दशा० ७, सूत्र २५ के समान

१ उम्मायं वा लभेज्जा,

२ दीहकालियं वा रोगायंकं पाउणिज्जा,

३ केवलि-पण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसिज्जा ।

एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन न करने वाले अनगार के लिए ये तीन स्थान अहितकर, अशुभ, असामर्थ्यकर अकल्याणकर एवं दुःखद भविष्य वाले होते हैं, यथा—

१ उन्माद की प्राप्ति,

२ चिरकाल तक भोगे जाने वाले रोग एवं आतंक की प्राप्ति,

३ केवली प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट होना ।

सूत्र ३८

एग-राइयं भिक्खु-पडिमं सम्मं अणुपालेमाणस्स

अणगारस्स इमे तओ ठाणा हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेसाए, अणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—

१ ओहिनाणे वा से समुपज्जेज्जा,

२ मण-पज्जवनाणे वा से समुपज्जेज्जा,

३ केवल-नाणे वा से असमुप्पन्नपुव्वे समुपज्जेज्जा ।

एवं खलु एगराइयं भिक्खु-पडिमं

अहासुयं, अहाकप्पं, अहामग्गं, अहातच्चं, सम्मं काएण फासित्ता, पालित्ता, सोहित्ता, तीरित्ता, किट्टित्ता, आराहित्ता, आणाए अणुपालित्ता या वि भवति ।

(१२)

एक रात्रिक भिक्षु-प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन करने वाले अनगार के लिए ये तीन स्थान हितकर, शुभ, सामर्थ्यकर, कल्याणकर एवं सुखद भविष्य वाले होते हैं, यथा—

१ अवधिज्ञान की उत्पत्ति,

२ मनःपर्यवज्ञान की उत्पत्ति,

३ अनुत्पन्न केवलज्ञान की उत्पत्ति ।

इस प्रकार यह एक रात्रिकी भिक्षु-प्रतिमा यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग और यथातथ्य रूप से सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर, पालन कर (अतिचारों का) शोधन कर, कीर्तन और आराधन कर जिनाज्ञा के अनुसार बिना किसी अन्तर या व्यवधान के) पालन की जाती है ।

सूत्र ३९

एयाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहि वारस भिक्खु-पडिमाओ पण्णत्ताओ,
—त्ति वेमि।

इति भिक्खु-पडिमा णामं सत्तमी दसा समत्ता।

हे आयुष्मन् ! स्थविर भगवन्तों ने ये उक्त द्वादश भिक्षु-प्रतिमाएँ कही हैं।
—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षु-प्रतिमा नाम की सातवीं दशा समाप्त।

□

अट्ठमा पज्जोसवणा कप्पदसा

वर्षावासनिवासरूपा प्रथमा समाचारी

आठवीं पर्युषणा कल्पदशा

पहली वर्षावास समाचारी

सूत्र १

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ।

प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ?

उ०—जओ णं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छन्नाइं लित्ताइं गुत्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमियाइं खाओदगाइं खायनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कडाइं परिभुत्ताइं परिणामियाइं भवंति ।

से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ । ८/१।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर ने वर्षाकाल का एक मास और वीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया ।

हे भगवन ! आपने यह किस अभिप्राय से कहा कि श्रमण भगवान महावीर ने वर्षाकाल का एक मास और वीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया ?

विशेषार्थ—बृहत्कल्प (उद्दे० १ सूत्र ३५) की निर्युक्ति में वर्षावास दो प्रकार का कहा है । १. प्रावृट् और २ वर्षा रात्र ।

श्रावण और भाद्रपद मास 'प्रावृट्', आश्विन और कार्तिक मास 'वर्षारात्र' कहे जाते हैं। चूर्णी और विशेष चूर्णी में भी यही कहा गया है।

स्थानाङ्ग अ० ५, उ० २, सूत्र ४१३ की टीका में वर्षाकाल के चार मास को 'प्रावृट्'' कहा है तथा 'प्रावृट्' के दो भाग किए गए हैं।

प्रथम प्रावृट् पचास दिन का, द्वितीय प्रावृट् सत्तर दिन का।

हे आयुष्मन् ! उस समय तक गृहस्थों के घर बांस आदि की चटाइयों से बांध दिये जाते हैं, खड़िया मिट्टी आदि से पोत दिये जाते हैं, घास आदि से आच्छादित कर दिए जाते हैं, गोबर आदि से लीप दिए जाते हैं, काँटों की बाड़ और कपाट आदि से सुरक्षित कर दिए जाते हैं, विषम भूमि को तोड़कर सम भूमि कर दी जाती है, कोमल चिकने पाषाण खण्डों से घिस दिये जाते हैं, धूप से सुगंधित कर दिए जाते हैं, जल निकलने की नालियाँ साफ कर दी जाती हैं, उक्त सभी कार्य गृहस्थ अपने लिए (तब तक) कर लेते हैं।

इस अर्थ (कारण) से ऐसा कहा गया है कि श्रमण भगवान महावीर ने वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया।

सूत्र २

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ।

तहा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति।८/२।

जिस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया,

उसी प्रकार उनके गणधरों ने भी वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया।

सूत्र ३

जहा णं गणहरा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति।

तहा णं गणहरसीसा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति। ८/३

जिस प्रकार गणधरों ने वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया।

उसी प्रकार गणधरों के शिष्यों ने भी वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया।

सूत्र ४

जहा णं गणहरसीसा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसर्विति।

तहा णं थेरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसर्विति।८/४।

जिस प्रकार गणधरों के शिष्यों ने वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया।

उसी प्रकार (उनके पीछे होने वाले) स्थविरों ने भी वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया।

सूत्र ५

जहा णं थेरा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसर्विति।

तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, ते वि य णं वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसर्विति।८/५।

जिस प्रकार स्थविरों ने वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय किया,

उसी प्रकार अद्यतन (आजकल) के जो ये श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं, वे भी वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय करते हैं।

सूत्र ६

जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा णिग्गंथा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसर्विति।

तहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसर्विति। ८/६।

जिस प्रकार आजकल के ये श्रमण निर्ग्रन्थ वर्षाकाल का एक मास बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय करते हैं,

उसी प्रकार हमारे आचार्य और उपाध्याय भी वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय करते हैं।

सूत्र ७

जहा णं अम्हं आयरिया उवज्झाया वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति।

तहा णं अम्हे वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो।

अंतरा वि य से कप्पइ,

नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए।८/७।

जिस प्रकार हमारे आचार्य और उपाध्याय वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय करते हैं।

उसी प्रकार हम भी वर्षाकाल का एक मास और बीस रातें व्यतीत होने पर वर्षावास का निश्चय करते हैं।

विशेष कारण उपस्थित होने पर पचासवें दिन से पहले भी वर्षावास का निश्चय करना कल्पता है, किन्तु पचासवीं रात्रि का अतिक्रमण करना नहीं कल्पता है।

वर्षावग्रहमानरूपा द्वितीया समाचारी

सूत्र ८

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सकोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ताणं चिट्ठिउं अहालंदमवि उग्गहे।८/८।

दूसरी वर्षावग्रह-क्षेत्र समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को चारों दिशा तथा विदिशाओं में एक कोश सहित एक योजन क्षेत्र का अवग्रह (स्थान) ग्रहण करके उस अवग्रह में रहना कल्पता है। उस अवग्रह से बाहर "यथालन्दकाल" ठहरना भी नहीं कल्पता है।

विशेषार्थ—कल्पसूत्र की प्राचीन व्याख्या के अनुसार इस सूत्र में "उग्गहे" शब्द का अन्वय और "न बहि" का अध्याहार करने पर इस सूत्र का मूल पाठ इस प्रकार होगा।

"वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सकोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ताणं चिट्ठिउं उग्गहे, न बहि अहालंदमवि।"

—ऊपर लिखा हुआ अर्थ इस मूल पाठ के अनुसार है। वर्षाकाल में निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थियाँ जिस क्षेत्र में रहने का निश्चय करें उसके मध्यवर्ती स्थान से आठों दिशाओं में अढ़ाई-अढ़ाई कोश जाने तथा आने पर पाँच कोश का क्षेत्रावग्रह होता है।

हाथ की गीली रेखाएँ सूखने में जितना समय लगता है उतने समय को "यथालंदकाल" कहा जाता है।

इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि अवग्रह क्षेत्र से बाहर निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को क्षणभर भी नहीं ठहरना चाहिए।

भिक्षाचर्या-रूपा तृतीया समाचारी

सूत्र ९

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए।८/९।

तीसरी भिक्षाचर्या समाचारी

वर्षावास रहने वाले निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को एक कोश सहित एक योजन क्षेत्र में चारों ओर भिक्षाचर्या के लिये जाना एवं लौटकर आना कल्पता है।

सूत्र १०

जत्थ नई निच्चोयगा निच्चसंदणा नो से कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिणियत्तए।८/१०।

जहाँ नदी जल से भरी हुई सदा बहती रहती हो वहाँ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को भिक्षाचर्या के लिए एक कोश सहित एक योजन क्षेत्र में चारों ओर जाना-आना नहीं कल्पता है।

सूत्र ११

एरावई कुणालाए...जत्थ चक्किया सिया एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा...एवं णं कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए।

एवं च नो चक्किया।

एवं से नो कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए।८/११।

कुणाला नगरी के समीप वहने वाली एरावती नदी में जहाँ एक पैर जल में और एक पैर स्थल में रखकर जाना-आना शक्य हो तो वहाँ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को भिक्षाचर्या के लिए एक कोश सहित एक योजन क्षेत्र में चारों ओर जाना आना कल्पता है।

यदि उक्त प्रकार से जाना-आना शक्य न हो तो निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को भिक्षाचर्या के लिए एक कोश सहित एक योजन क्षेत्र में चारों ओर जाना आना नहीं कल्पता है।

विशेषार्थ—यहाँ पर एरावती नदी का उल्लेख केवल औपचारिक है, अतः जहाँ कहीं कोई भी नदी अल्प जल वाली एवं निरन्तर न वहने वाली हो तो उस नदी में एक पैर जल में और एक पैर स्थल में रखकर वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ भी भिक्षाचर्या के लिए अवग्रह क्षेत्र में जा, आ सकते हैं।

जिस क्षेत्र में वर्षावास स्थित निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ हैं उस क्षेत्र की एक या अनेक दिशाओं में जल से भरी हुई नदियाँ सदा वहती हों तो उन-उन दिशाओं में अवग्रह क्षेत्र एक कोश सहित एक योजन का नहीं माना गया है।

परस्पराहार-दानरूपा चतुर्थी समाचारी

सूत्र १२

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—दावे भंते! एवं से कप्पइ दावित्तए,

नो से कप्पइ पडिगाहित्तए।८/१२।

चौथी परस्पर आहार-दान समाचारी

वर्षावास रहे हुए साधुओं में से किसी साधु को आचार्य इस प्रकार कहे कि—

हे भदन्त! आज तुम अमुक ग्लान साधु के लिए आहार लाकर दो।

ऐसा कहने पर ग्लान साधु के लिए आहार लाकर देना उसे कल्पता है, किन्तु स्वयं को आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

सूत्र १३

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—पडिगाहेहि भंते! एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए,

नो से कप्पइ दावित्तए।८/१३।

वर्षावास रहे हुए साधुओं में से किसी एक साधु को आचार्य इस प्रकार कहे कि—

"हे भदन्त ! तुम आज स्वयं आहार ग्रहण करो।"

ऐसा कहने पर उसे स्वयं आहार ग्रहण करना कल्पता है, किन्तु ग्लान साधु को आहार देना नहीं कल्पता है।

सूत्र १४

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—दावे भंते ! पडिगाहेहि भंते ! एवं से कप्पइ दावित्तए वि, पडिगाहित्तए वि।८/१४।

वर्षावास रहे हुए साधुओं में से किसी एक साधु को आचार्य इस प्रकार कहे कि—

"हे भदन्त ! तुम आज अमुक ग्लान साधु को आहार लाकर दो, और हे भदन्त ! तुम स्वयं भी उसमें से ग्रहण कर लो।"

ऐसा कहने पर उसे ग्लान साधु के लिए आहार लाकर देना और उस आहार में से स्वयं को ग्रहण करना भी कल्पता है।

सूत्र १५

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—नो दावे भंते ! नो पडिगाहे भंते ! एवं से कप्पइ नो दावित्तए, नो पडिगाहित्तए। ८/१५।

वर्षावास में रहे हुए साधुओं में से किसी एक साधु को आचार्य इस प्रकार कहे कि—

"हे भदन्त ! आज तुम अमुक ग्लान साधु को आहार न दो और न तुम स्वयं भी आहार करो।"

ऐसा कहने पर उसे न ग्लान साधु को आहार देना कल्पता है और न स्वयं को आहार करना कल्पता है।

विकृति-परित्यागरूपा पञ्चमी समाचारी

सूत्र १६

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा हट्ठाणं तुट्ठाणं आरोग्गाणं बलिय-सरीराणं इमाओ पंच विगईओ आहारित्तए, तं जहा—

१ खीरं, २ दहिं, ३ सप्पि, ४ तिल्लं, ५ गुडं।

पांचवीं विकृति-त्याग समाचारी

वर्षावास रहे हुए हृष्ट, पुष्ट, प्रसन्न, निरोग एवं सशक्त शरीर वाले निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को इन पांच विकृतियों का आहार करना नहीं कल्पता है, यथा—

१. क्षीर (दूध), २. दही, ३. घृत, ४. तेल और ५. गुड़।

विशेषार्थ—स्थानांग अ० ४ उ० १ सूत्र २७४ में ४ गोरस विकृतियों के चार स्नेह विकृतियों के और चार महाविकृतियों के नाम दिए गये हैं।

(क) गोरस विकृतियों के नाम—

१. दूध, २. दही, ३. घी और ४. नवनीत।

स्नेह विकृतियों के नाम—

१. तेल, २. घृत, ३. वसा और ४. नवनीत।

चार महाविकृतियों के नाम—

१. मधु, २. मद्य, ३. माँस और ४. नवनीत।

(ख) स्थानांग (अ० ९ सूत्र ६७४) में नो विकृतियों के नाम दिए हैं।

१. दूध, २. दही, ३. नवनीत, ४. घृत, ५. तेल, ६. गुड़, ७. मधु, ८. मद्य और ९. माँस।

(ग) आवश्यक निर्युक्ति (गाथा १६००, १६०१) में दश विकृतियों के नाम दिए गये हैं।

उनमें पूर्वोक्त ९ के अतिरिक्त एक दसवीं "पक्वान्न" विकृति है।

इन दश विकृतियों के दो विभाग हैं—

१. प्रशस्त और २. अप्रशस्त

प्रशस्त विकृतियों के नाम—

१. दूध, २. दही, ३. नवनीत, ४. घृत, ५. गुड़, ६. तेल, ७. पक्वान्न।

अप्रशस्त विकृतियों के नाम—

१. मधु, २. मद्य, ३. माँस (—निसीह भाष्य गाथा ३१६९).

मांसादि चार महाविकृतियों के खाने का निषेध इसलिए है कि माँस मद्यादि में निरन्तर सम्मूर्छिम जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। यथा—

गाहा—मज्जे महुम्मि मंसम्हि, णवणीयंमि चउत्थए।
उप्पज्जंति अणंता, तव्वण्णा तत्थ जंतुणो ॥१॥

प्रशस्त विकृतियाँ भी दो प्रकार की हैं।

से य पमाणपत्ते होउ "अलाहि", इ य वत्तव्वं सिया।

से किमाहु भंते !

एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स,

सिया णं एवं वयंतं परो वइज्जा—"पडिगाहेह अज्जो ! पच्छा तुमं भोक्खसि वा, पाहिसि वा।"

एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए,

नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिगाहित्तए।८/१७।

छठी ग्लान-परिचर्या समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थों में से वैयावृत्य करने वाला निर्ग्रन्थ आचार्य से पूछे कि—

हे भगवन् ! आज किसी ग्लान निर्ग्रन्थ को विकृति (दूध आदि) से प्रयोजन है ? (विकृति की आवश्यकता है ?)

आचार्य कहे—हाँ प्रयोजन है।

तदनन्तर वैयावृत्य करने वाले निर्ग्रन्थ ग्लान निर्ग्रन्थ से पूछे कि—तुम्हें आज किस विकृति की कितनी मात्रा आवश्यक है ?

ग्लान निर्ग्रन्थ विकृति का नाम और प्रमाण वता दे तव वैयावृत्य करने वाला निर्ग्रन्थ आचार्य से कहे कि अमुक विकृति अमुक परिमाण में निर्ग्रन्थ के लिए आवश्यक है।

वैयावृत्य करने वाले निर्ग्रन्थ से आचार्य कहे—ग्लान निर्ग्रन्थ के लिए जितनी विकृति आवश्यक है उतनी ही ले आओ।

वैयावृत्य करने वाला निर्ग्रन्थ गृहस्थ के घर जाकर विकृति की याचना करे—तथा आवश्यकतानुसार प्राप्त होने पर 'वस पर्याप्त है' इस प्रकार कहे।

गृहस्थ यदि कहे—"हे भदन्त ? आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

तव वैयावृत्य करने वाले निर्ग्रन्थ को इस प्रकार कहना चाहिए "ग्लान साधु के लिए इतनी ही विकृति पर्याप्त है।"

इस प्रकार कहने पर भी यदि गृहस्थ कहे कि "हे आर्य ! अभी और ग्रहण करो !"

यदि ग्लान निर्ग्रन्थ के उपयोग में आने के वाद शेष रह जावे तो "आप उपयोग में ले लेना।"

अदृष्टवस्त्वयाचना-रूपा सप्तमी समाचारी

सूत्र १८

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थि णं थेराणं तहप्पगाराइं कुलाइं कडाइं पत्तिआइं थिज्जाइं वेसासियाइं संमयाइं बहुमयाइं अणुमयाइं भवंति ।

तत्थ से नो कप्पइ अदक्खु वइत्तए अत्थि ते आउसो ! इमं वा, इमं वा ?

से किमाहु भंते !

सड्ढी गिही गिण्हइ वा, वेणियं पि कुज्जा ।८/१८

सातवीं अदृष्ट वस्तु-अयाचना समाचारी

स्थविर प्रतिबोधितकुल, जो प्रीतिकर और प्रतीतिकर है, दान देने में उदार एवं विश्वस्त है ।

जिनमें साधुओं का प्रवेश सम्मत है,

साधु सम्मान को प्राप्त हैं,

साधुओं को दान देने के लिए स्वामी द्वारा अनुमति दी हुई है ।

उनमें अदृष्ट वस्तु के लिए "हे आयुष्मन् ! यह या वह अमुक वस्तु तुम्हारे यहाँ हैं ? ऐसा पूछना नहीं कल्पता है ।

प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—श्रद्धालु गृहस्वामी श्रद्धा की अधिकता से मांगी गई वस्तु घर में नहीं होने पर मूल्य देकर लायेगा या मूल्य से प्राप्त न होने पर चुराकर लाएगा ।

विशेषार्थ—मूल्य देकर लाई गई अथवा चुराकर लाई गई वस्तु भिक्षु और भिक्षुणी के लिए अकल्प्य हैं, अतः जो वस्तु गृहस्थ के घर में दिखाई न दे वह नहीं माँगना चाहिए ।

गोचरी काल नियमन-रूपा अष्टमी समाचारी

सूत्र १९

वासावासं पज्जोसवियस्स निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगं गोअर-कालं गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा ।

नन्नत्थ आयरिय-वेयावच्चेण वा, ८/१९

आठवीं गोचर काल नियामका समाचारी

वर्षावास रहे हुए नित्य भोजी (नित्य एक वार आहार करने का नियम रखने वाले) भिक्षु के लिए एक गोचर काल का विधान है और उसे गृहस्थों के घरों में भक्त पान के लिए एक वार निष्क्रमण-प्रवेश करना कल्पता है, केवल आचार्य की वैयावृत्य करने वाले को छोड़कर ।

वासावासं पज्जोसवियस्स, चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स एगं गोयरकालं···

अयं एवइए विसेसे—जं से पाओ निक्खम्म पुव्वामेव वियडगं भुच्चा पिच्चा पडिग्गहगं संलिहिय, संपमज्जिय।

से य संथरिज्जा-कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए।

से य नो संथरिज्जा—एवं से कप्पइ दुच्चं पि गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।८/२५।

वर्षावास रहे हुए चतुर्थभक्त (उपवास) करने वाले भिक्षु के लिए एक गोचर काल का विधान है।

यहाँ इतना विशेष है कि वह भिक्षु प्रातः प्रथम प्रहर में उपाश्रय से निकलकर अन्य भिक्षुओं से पहले प्रासुक शुद्ध निर्दोष आहार खा-पीकर तथा पात्र को प्रक्षालित एवं प्रमार्जित कर रख दे।

यदि एक बार किए हुए उस आहार से क्षुधा उपशान्त हो जाये तो उस दिन उसे उसी आहार पर निर्भर रहना कल्पता है।

यदि क्षुधा उपशान्त न हो तो उसे गृहस्थों के घरों में भक्त पान के लिए दूसरी बार निष्क्रमण-प्रवेश करना भी कल्पता है। ८/२५

सूत्र २६

वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति दो गोअरकाला··· गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा ।८/२६।

वर्षावास रहे हुए छट्ठ भक्त करने वाले भिक्षु के लिए दो गोचर काल का विधान है। अतः गृहस्थों के घरों में भक्त पान के लिए दो वार निष्क्रमण-प्रवेश करना कल्पता है। (एक दिन में दो वार आहार कर सकता है)।

सूत्र २७

वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ गोअर-काला····गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा ।८/२७।

वर्षावास रहे हुए अट्ठम भक्त करने वाले भिक्षु के लिए तीन गोचर काल का विधान है। अतः गृहस्थों के घरों में भक्त-पान के लिए तीन वार निष्क्रमण-प्रवेश करना कल्पता है। (एक दिन में तीन वार आहार कर सकता है।)

सूत्र २८

वासावासं पज्जोसवियस्स विगिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वे वि गोअर काला···गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा ।८/२८।

वर्षावास रहे हुए विकृष्ट भोजी (चार-पाँच आदि उपवास करने वाले) भिक्षु के लिए इच्छानुसार गोचरकाल का विधान है। अतः गृहस्थों के घरों में भक्त पान के लिए उसे इच्छानुसार निष्क्रमण-प्रवेश करना कल्पता है।

सूत्र २९

पानक ग्रहण-रूपा नवमी समाचारी

वासावासं पज्जोसवियस्स निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वाइं पाणगाइं पडिगाहित्तए ।८/२९।

नवमी पानक ग्रहण-रूपा समाचारी

वर्षावास रहे हुए नित्यभोजी (एक वार आहार करने का नियम रखने वाले) भिक्षु के लिए सभी प्रकार के पानक (पेय द्रव्य) ग्रहण करना कल्पता है।

सूत्र ३१

वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—

१ तिलोदगं वा, २ तुसोदगं वा, ३ जवोदगं वा ।८/३१।

वर्षावास रहे हुए षष्ठ भक्त करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक लेने कल्पते हैं, यथा—

१ तिलोदक, २ तुषोदक और ३ यवोदक ।

सूत्र ३२

वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—

१ आयामे वा, १ सोवीरे वा, ३ सुद्धवियडे वा ।८/३२।

वर्षावास रहे हुए अष्टम भक्त करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक लेने कल्पते हैं, यथा—

१ आयाम, २ सौवीर और ३ शुद्ध विकट जल ।

सूत्र ३३

वासावासं पज्जोसवियस्स विगिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ···एगे उसिण-वियडे पडिगाहित्तए ।

से ऽ वि य णं असित्थे,
नो वि य णं ससित्थे ।८/३३।

वर्षावास रहे हुए विकृष्ट भोजी भिक्षु को एकमात्र उष्ण-विकट जल ग्रहण करना कल्पता है । वह भी असिक्थ (अन्न कण-रहित), ससिक्थ (अन्न कण-सहित) नहीं ।

सूत्र ३४

वासावासं पज्जोसवियस्स भत्तपडियाइक्खियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिणवियडे पडिगाहित्तए ।

सेऽवि य णं असित्थे, नो चेव णं ससित्थे ।
सेऽवि य णं परिपूए, नो चेव णं अपरिपूए ।
सेऽवि य णं परिमिए, नो चेव णं अपरिमिए ।
सेऽवि य णं बहुसंपन्ने, नो चेव णं अबहुसंपन्ने ।८/३४।

दत्ति-संख्या-रूपा दशमी समाचारी

वासावासं पज्जोसवियस्स संखादत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोअणस्स पडिगाहित्तए, पंच पाणगस्स।

अहवा चत्तारि भोअणस्स, पंच पाणगस्स।

अहवा पंच भोअणस्स, चत्तारि पाणगस्स।

तत्थ णं एगा दत्ती लोणासायणमवि पडिगाहिआ सिआ…कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए।

नो से कप्पइ दुच्चंपि गाहावइ-कुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा। ८ ३५

दशवीं दत्ति संख्या-रूपा समाचारी

वर्षावास रहे हुए दत्तियों की संख्या का नियम धारण करने वाले भिक्षु को भोजन की पांच दत्तियां और पानक की पांच दत्तियां ग्रहण करना कल्पता है।

अथवा—भोजन की चार और पानक की पांच।

अथवा—भोजन की पांच और पानक की चार दत्तियां ग्रहण करना कल्पता है।

उनमें एक दत्ति नमक की डली जितनी भी हो तो उस दिन उसे उसी भक्त (आहार) से निर्वाह करना चाहिए, किन्तु उसे गृहस्थों के घर में भिक्षा के लिए दूसरी बार निष्क्रमण-प्रवेश करना नहीं कल्पता है।

विशेषार्थ—जो भिक्षु भक्त-पान की दत्तियों की संख्या का अभिग्रह करके गोचरी के लिए निकलता है वह 'संख्या दत्तिक' भिक्षु कहा जाता है।

अखण्ड धारा से एक बार में जितना भक्त (दाल-चावल) या पानक दिया जाता है उतना एक दत्ती कहा जाता है।

यदि कोई गृहस्थ अखण्ड धारा से एक बार में नमक की चुटकी जितना अल्प भक्त-पान भी दे तो उसे एक दत्ति ही मानना चाहिए।

स्वीकृत संख्या के अनुसार सभी दत्तियां यदि अत्यल्प भक्त-पान वाली हों तो संख्या-दत्तिक भिक्षु को उस दिन उस अल्प भक्त-पान से ही निर्वाह करना चाहिए, किन्तु दूसरी बार भिक्षा के लिये नहीं जाना चाहिए।

सूत्र में यद्यपि भक्त-पान की पांच दत्तियों से अधिक या न्यून लेने का विधान अथवा निषेध नहीं है तथापि टीकाकार लिखते हैं—"अत्र पञ्चादिक-मुपलक्षणं तेन यथाऽभिग्रहं न्यूनाऽधिका वा वाच्या" अर्थात् यहाँ पांच की संख्या को उपलक्षण मानकर भिक्षु कम या अधिक दत्तियों की संख्या का भी अभिग्रह कर सकता है और तदनुसार वह भक्त-पान की दत्तियां ग्रहण कर सकता है। इसके साथ टीकाकार यह भी लिखते हैं कि गृहस्थ यदि भक्त की दो तीन अधिक परिमाण वाली दत्तियां दे दे और भिक्षु उन्हें अपने लिए पर्याप्त समझे तो शेष दो-तीन दत्तियों की संख्या को पानक की दत्तियों में जोड़कर पानक की अधिक दत्तियां न ले। इसी प्रकार पानक की दो-तीन दत्तियां अधिक परिमाण वाली मिल जाने पर शेष पानक की दत्तियों को भक्त की दत्तियों में जोड़कर भक्त की अधिक दत्तियां न ले।

संखडिगमन निषेध-रूपा एकादशमी समाचारी

सूत्र ३६

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाणं वा, निग्गंथीणं वा जाव उवस्सयाओ सत्तघरंतरं संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए।

एगे एवमाहंसु—"नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परेण सत्तघरंतरं संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए।"

एगे पुण एवमाहंसु—"नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परंपरेण संखडिं संनि-यट्टचारिस्स इत्तए। ८/३६

ग्यारहवी संखड़ी-रूपा समाचारी

वर्षावास रहने वाले संखड़ी सन्निवृत्तचारी (बृहद् भोज का आहार न लेने वाले) निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को उपाश्रय से लेकर सात घर पर्यन्त भिक्षा के लिए जाना नहीं कल्पता है। कुछ आचार्यों का कहना है कि संखड़ी सन्निवृत्तचारी

सूत्र ३८

वासावासं पज्जोसवियस्स···पाणि-पडिग्गहियस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ अगिहंसि पिंडवायं पडिगाहित्ता पज्जोसवित्तए।

पज्जोसवेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवइज्जा, देसं भुच्चा देसमादाय से पाणिणा पाणिं परिपिहित्ता उरंसि वा णं निलिज्जिजज्जा, कक्खंसि वा णं समाहडिज्जा, अहाछन्नाणि लेणाणि वा उवागच्छिज्जा, रुक्खमूलाणि वा उवागच्छिज्जा, जहा से पाणिंसि दए वा, दगरए वा, दगफुसिया वा नो परिआवज्जइ।८/३८

वर्षावास रहने वाले पाणिपात्रग्राही भिक्षु को घर के विना अनाच्छादित स्थान पर आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

कदाचित् अनाच्छादित स्थान में वह आहार लेने लगे और उस समय अकस्मात् वर्षा आ जाए तो हाथ में बचे हुए शेष आहार को हाथ से ढक कर वक्षःस्थल के नीचे छिपाए या कोख में दबाए, तथा तत्काल आच्छादित लयन में या वृक्ष के नीचे चला जाए जिससे हाथ में रहे हुए आहार पर पानी, पानी के कण (फुंहार) और पानी के सूक्ष्म कण (धुंअर) न गिरे।

जब जल बरसना बन्द हो जाय तब शेष भोजन खाकर अपने स्थान को जाना चाहिए।

पतद्ग्रहधारि स्थविर-कल्पिकस्य
आहार विधि-रूपा त्रयोदशी समाचारी

सूत्र ३९

वासावासं पज्जोसवियस्स पडिग्गह धारिस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ वग्घारिय वुट्ठिकायंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायंसि···संतरुत्तरंसि गाहावइ कुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा। ८।३९

तेरहवीं स्थविर कल्प-आहार-रूपा समाचारी

वर्षावास रहने वाले पात्रधारी भिक्षु को निरन्तर विपुल वर्षा होने पर गृहस्थों के घरों में भक्त-पान के लिए निष्क्रमण-प्रवेश करना नहीं कल्पता है।

किन्तु रुक-रुककर अल्प वर्षा होने पर गृहस्थों के घरों में भक्त-पान के लिये निष्क्रमण-प्रवेश करना कल्पता है।

जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पइ पडिगाहित्तए ।

जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते नो से कप्पइ पडिगाहित्तए । ८/४३

गृहस्थ के घर में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के आगमन से पूर्व दाल और चावल दोनों रंधे हुए हों तो दोनों लेने कल्पते है । किन्तु बाद में रँधे हों तो दोनों लेने नहीं कल्पते हैं ।

(तात्पर्य यह है कि) निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के आगमन से पूर्व जो आहार निष्पन्न हो वह लेना कल्पता है और जो आगमन के पश्चात् निष्पन्न हो वह लेना नहीं कल्पता है ।

सूत्र ४४

वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स वा, निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झय वुट्ठिकाए निवइज्जा,

कप्पइ से अहे आरामंसि वा, अहे उवस्सयंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए ।

नो से कप्पइ पुव्वगहिएणं भत्त-पाणेणं वेलं उवायणावित्तए ।

कप्पइ से पुव्वामेव वियडगं भुच्चा, पिच्चा पडिग्गहगं संलिहिय संलिहिय संपमज्जिय संपमज्जिय एगाययं भंडगं कट्टु सावसेसे सूरे जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए ।

नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए । ८/४४

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ गृहस्थों के घरों में आहार के लिए गये हुए हों और लौटकर उपाश्रय आते समय रुक-रुक कर वर्षा आने लगे तो उन्हें आराम-गृह, उपाश्रय, विकट गृह और वृक्ष के नीचे आकर ठहरना कल्पता है, किन्तु पूर्व गृहीत भक्त-पान से भोजन वेला का अतिक्रमण करना नहीं कल्पता है ।

(अर्थात् सूर्यास्त पूर्व) निर्दोष आहार खा-पीकर पात्रों को धोकर पोंछकर और प्रमार्जन कर एकत्रित करे तथा सूर्य के रहते हुए जहाँ उपाश्रय हो वहाँ आ जाए किन्तु वहाँ रात रहना नहीं कल्पता है ।

विशेषार्थ—साधु या साध्वी जिस उपाश्रय से गोचरी के लिए निकलें, यदि वर्षा होने के कारण दिन में अन्यत्र ठहरना पड़े तो भी उन्हें सायंकाल तक उसी उपाश्रय में आ जाना चाहिए । चूंकि उपाश्रय से वाहर रात में रहना वर्षाकाल में सर्वथा निषिद्ध है ।

सूत्र ४६

वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा,

कप्पइ से अहे आरामंसि वा, अहे उवस्सयंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए ।

तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स, एगाए य अगारीए एगयओ चिट्ठित्तए ।

एवं चउभंगी ।

अत्थि णं इत्थ केइ पंचमए थेरे वा, थेरियाइ वा अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे···

एवं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए ।८/४६

वर्षावास रहा हुआ निर्ग्रन्थ गृहस्थों के घरों में आहार के लिए गया हुआ हो और लौटकर उपाश्रय की ओर आ रहा हो उस समय रुक-रुक कर वर्षा आने लगे तो उसे आरामगृह, उपाश्रय, विकटगृह या वृक्ष के नीचे आकर ठहरना कल्पता है ।

(१) किन्तु वहाँ अकेले निर्ग्रन्थ को अकेली स्त्री के साथ ठहरना नहीं कल्पता है ।

(२) अकेले निर्ग्रन्थ को दो स्त्रियों के साथ ठहरना नहीं कल्पता है ।

(३) दो निर्ग्रन्थों को अकेली स्त्री के साथ ठहरना नहीं कल्पता है ।

(४) दो निर्ग्रन्थों को दो स्त्रियों के साथ ठहरना नहीं कल्पता है ।

यदि वहाँ पर पाँचवा स्थविर पुरुष या स्थविर स्त्री हो अथवा वह स्थान आने-जाने वालों को स्पष्ट दिखाई देता हो और अनेक द्वार वाला हो तो जब तक वर्षा होती रहे तब तक उस साधु को स्त्रियों के साथ एक स्थान में एक साथ ठहरना कल्पता है ।

सूत्र ४७

·······एवं चेव निग्गंथीए अगारस्स य भाणियव्वं ।८/४७

इसी प्रकार निर्ग्रन्थी और गृहस्थ पुरुष की चौभंगी भी कहलानी चाहिये ।

अपरिज्ञप्तार्थमशनाद्यानयननिषेधरूपा चतुर्दशी समाचारी

सूत्र ४८

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अपरिण्णएणं अपरिण्णयस्स अट्ठाए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा; साइमं वा जाव पडिगाहित्तए ।

सप्तस्नेहाऽऽयतनरूपा पञ्चदशी समाचारी

सूत्र ४६

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा उदउल्लेण वा, ससिणिद्धेण वा काएणं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए।

से किमाहु भंते !

सत्त सिणेहाययणा पण्णत्ता, तंजहा—

१ पाणी, २ पाणिलेहा, ३ नहा, ४ नहसिहा,

५ भमुहा, ६ अहरोट्ठा, ७ उत्तरोट्ठा।

अह पुण एवं जाणिज्जा—विगओदगे मे काए छिन्नसिनेहे…

एवं से कप्पइ असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए।

१८/४६

पन्द्रहवीं सप्त स्नेहायतन-रूपा समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को वर्षा के जल से स्वयं का शरीर गीला हो या वर्षा का जल स्वयं के शरीर से टपकता हो तो अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार करना नहीं कल्पता है।

हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा ?

शरीर पर पानी टिकने के सात स्थान कहे गये हैं। यथा—

१ हाथ और २ हाथ की रेखाएं,

३ नख और ४ नख के अग्रभाग,

५ भौंह (आँखों के ऊपर के वाल),

६ होठ के नीचे और ७ होठ के ऊपर

यदि वह ऐसा जाने कि मेरे शरीर से वर्षा का जल नितर गया है अथवा वर्षा का जल सूख गया है तो उसे अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार करना कल्पता है।

विशेषार्थ—इस सूत्र में वर्षा जल के ठहरने के सात स्थानों में मस्तक का नाम नहीं है; इसका कारण यह प्रतीत होता है कि वर्षा काल में मस्तक ढके विना साधु को वाहर निकलना नहीं कल्पता है अतः मस्तक का उल्लेख नहीं है।

होठ के ऊपर का अभिप्राय मूँछ से है।

होठ के नीचे का अभिप्राय डाढ़ी के वालों से है।

सूक्ष्माष्टक यतना स्वरूपा षोडशी समाचारी

सूत्र ५०

वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, इमाइं अट्ठ सुहुमाइं जाइं छउमत्थेणं निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वाइं पासियव्वाइं पडिलेहियव्वाइं भवंति, तं जहा—

१ पाणसुहुमं, २ पणगसुहुमं, ३ बीअसुहुमं, ४ हरियसुहुमं,

५ पुप्फसुहुमं, ६ अंडसुहुमं, ७ लेणसुहुमं, ८ सिणेहसुहुमं।८/५०

सोलहवीं सूक्ष्माष्टक यतना-रूपा समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के ये आठ सूक्ष्म वार-वार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन करने योग्य हैं, यथा—

१. प्राणी सूक्ष्म, २. पनक सूक्ष्म, ३. वीज सूक्ष्म, ४. हरित सूक्ष्म, ५. पुष्प सूक्ष्म, ६. अण्ड सूक्ष्म, ७. लयन सूक्ष्म, और ८. स्नेह सूक्ष्म।

प्राणि-सूक्ष्म वर्णन समाप्त ।

सूत्र ५२

प्र०—से किं तं पणगसुहुमे ?

उ०—पणगसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ किण्हे, २ नीले, ३ लोहिए, ४ हालिद्दे, ५ सुक्किल्ले ।

अत्थि पणगसुहुमे तद्दव्वसमाणवण्णे नामं पण्णत्ते ।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ । से तं पणगसुहुमे । (२) ।८/५२

प्र०—भगवन् ! पनक सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—पनक सूक्ष्म पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१-५ कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले ।

वर्षा होने पर भूमि, काष्ठ, वस्त्र जिस वर्ण के होते हैं उन पर उसी वर्ण वाली फूलन आती है, अतः उनमें उसी वर्ण वाले जीव उत्पन्न होते हैं।

अतः ये पनक-सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

पनक-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

सूत्र ५३

प्र० —से किं तं बीअसुहुमे ?

उ०—बीअसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ किण्हे, २ नीले, ३ लोहिए, ४ हालिद्दे, ५ सुक्किल्ले।

अत्थि बीअसुहुमे कण्णिया समाणवण्णए नामं पण्णत्ते।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ। से तं बीअसुहुमे। (३) ८/५३

प्र०—भगवन्! बीज-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—बीज-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१-५ कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले।

वर्षाकाल में शालि आदि धान्यों में समान वर्ण वाले सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं वे बीज-सूक्ष्म कहे जाते हैं।

ये बीज-सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

बीज-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

सूत्र ५४

प्र०—से किं तं हरियसुहुमे ?

उ०—हरियसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ किण्हे, २ नीले, ३ लोहिए, ४ हालिद्दे, ५ सुक्किल्ले।

अत्थि हरियसुहुमे पुढवीसमाणवण्णए नामं पण्णत्ते।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे···पडिलेहियव्वे भवइ। से तं हरियसुहुमे। (४) ८/५४

प्र०—हे भगवन् ! हरित-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—हरित-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१-५ कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले ।

ये हरित-सूक्ष्म हरे पत्तों पर पृथ्वी के समान वर्ण वाले होते हैं ।

ये हरित-सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं ।

हरित-सूक्ष्म वर्णन समाप्त ।

सूत्र ५५

प्र०—से किं तं पुप्फसुहुमे ?

उ०—पुप्फसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ किण्हे, २ नीले, ३ लोहिए, ४ हालिद्दे, ५ सुक्किल्ले ।

अत्थि पुप्फसुहुमे रुक्खसमाणवण्णे नामं पण्णत्ते,

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ । से तं पुप्फसुहुमे । (५) ।८/५५

प्र०—हे भगवन् ! पुष्प-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—पुष्प-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१-५ कृष्ण वर्ण वाले यावत् शुक्ल वर्ण वाले ।

ये पुष्प-सूक्ष्म जीव फूलों में वृक्ष के समान वर्ण वाले होते हैं । ये पुष्प-सूक्ष्म जीव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं । ८-५४

पुष्प-सूक्ष्म वर्णन समाप्त ।

सूत्र ५६

प्र०—से किं तं अंडसुहुमे ?

उ०—अंडसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ उद्दंसंडे, २ उक्कलियंडे, ३ पिपीलिअंडे, ४ हलिअंडे, ५ हल्लोहलि अंडे ।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ । से तं अंडसुहुमे । (६) ८/५६

प्र०—हे भगवन् ! अण्ड सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—अण्ड सूक्ष्म पांच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१ उद्दंशाण्ड=मधु मक्खी मत्कुण आदि के अण्डे ।

२ उत्कलिकाण्ड=मकड़ी आदि के अण्डे ।

३ पिपीलिकाण्ड=किड़ी, मकोड़ी आदि के अण्डे ।

४ हलिकाण्ड=छिपकली आदि के अण्डे ।

५ हल्लो हलिकाण्ड=शरटिका आदि के अण्डे ।

ये अण्ड सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य, और प्रतिलेखन योग्य है ।

अण्ड सूक्ष्म वर्णन समाप्त ।

सूत्र ५७

प्र०—से किं तं लेणसुहुमे ?

उ०—लेणसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ उत्तिगलेणे, २ भिगुलेणे, ३ उज्जुए, ४ तालमूलए, ५ संबुक्कावट्टे नामं पंचमे ।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ । से तं लेणसुहुमे ।। (७) ८/५७

प्र०—हे भगवन् ! लयन-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—लयन-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१ उत्तिगलयन=भूमि में गोलाकार गड्ढे बनाकर रहने वाले, सूंड़ वाले जीव ।

२ भृगुलयन=कीचड़ वाली भूमि पर जमने वाली पपड़ी के नीचे रहने वाले जीव ।

३ ऋजुक लयन=बिलों में रहने वाले जीव ।

४ तालमूलक लयन=ताल वृक्ष के मूल के समान ऊपर सकड़े; अन्दर से चौड़े बिलों में रहने वाले जीव ।

५ शम्बूकावर्त लयन=शंख के समान घरों में रहने वाले जीव ।

ये लयन-सूक्ष्म जीव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं ।

लयन-सूक्ष्म वर्णन समाप्त ।

गुर्वनुज्ञया विहरणादि कर्तव्यरूपा सप्तदशी समाचारी

सूत्र ५६

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणि वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छेअयं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ।

कप्पइ से आपुच्छिउं १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणि वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छेअयं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ—"इच्छामि णं भंते। तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा?"

ते य से वियरेज्जा;

एवं से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

ते य से नो वियरेज्जा;

एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

से किमाहु भंते !

आयरिया पच्चवायं जाणंति ।८/५६।

सत्रहवीं गुरु अनुज्ञा समाचारी

वर्षावास रहा हुआ भिक्षु गृहस्थों के घरों में भक्त-पान के लिए निष्क्रमण-प्रवेश करना चाहे तो १ आचार्य २ उपाध्याय ३ स्थविर ४ प्रवर्तक ५ गणि ६ गणधर और ७ गणावच्छेदक इनमें जिसको अगुआ मानकर वह विचर रहा हो, उन्हें पूछे विना आना-जाना कल्पता नहीं है।

किन्तु १ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ प्रवर्त्तक, ५ गणि, ६ गणधर और ७ गणावच्छेदक इनमें से जिसको अगुआ मानकर वह विचर रहा हो उन्हें पूछकर ही आना-जाना कल्पता है।

(आज्ञा लेने के लिए भिक्षु इस प्रकार कहे)

हे भगवन् ! आपकी आज्ञा मिलने पर गृहस्थों के घरों में भक्तपान के लिए मैं निष्क्रमण-प्रवेश करना चाहता हूँ।

यदि आचार्यादि आज्ञा दें तो गृहस्थों के घरों में भक्तपान के लिए निष्क्रमण-प्रवेश करना कल्पता है।

यदि आचार्यादि आज्ञा न दें तो गृहस्थों के घरों में भक्तपान के लिए निष्क्रमण प्रवेश करना नहीं कल्पता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—आचार्यादि आने वाली विघ्न-बाधाओं को जानते हैं।

सूत्र ६०

एवं विहारभूमिं वा, वियार भूमिं वा, अन्नं वा किंचि पओअणं। ८/६०

इस प्रकार स्वाध्याय भूमि और शौचभूमि या अन्य किसी प्रयोजन के लिए उक्त आचार्यादि की आज्ञा लेकर आना-जाना कल्पता है।

सूत्र ६१

एवं गामाणुगामं दूइज्जित्तए ।८/६१।

यदि आचार्यादि आज्ञा न दें तो किसी एक विकृति का आहार करना नहीं कल्पता है।

प्र०—हे भगवन्! आपने ऐसा क्यों कहा?

उ०—आचार्यादि आने वाली विघ्न बाधाओं को जानते हैं।

सूत्र ६३

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरिं तेइच्छियं आउट्टित्तए।

नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणिं वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छेययं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ।

कप्पइ से आपुच्छित्ता १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणिं वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छेययं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ—इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अण्णयरिं तेइच्छियं आउट्टित्तए?

तं एवइयं वा, एवइखुत्तो वा?

ते य से वियरेज्जा;

एवं से कप्पइ अण्णयरिं तेइच्छियं आउट्टित्तए।

ते य से नो वियरेज्जा;

एवं से नो कप्पइ अण्णयरिं तेइच्छियं आउट्टित्तए।

से किमाहु भंते!

आयरिया पच्चवायं जाणंति। ८/६३।

वर्षावास रहा हुआ भिक्षु किसी एक रोग की चिकित्सा कराना चाहे तो आचार्य यावत् गणावच्छेदक इनमें से जिसको अगुआ मानकर वह विचर रहा हो उन्हें पूछे विना चिकित्सा कराना कल्पता नहीं है। किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक इनमें से जिसको अगुआ मानकर वह विचर रहा हो उन्हें पूछकर ही चिकित्सा कराना कल्पता है।

आज्ञा लेने के लिए भिक्षु इस प्रकार कहे।

हे भगवन्! आपकी आज्ञा मिलने पर अमुक रोग की चिकित्सा कराना चाहता हूं। वह भी अमुक प्रकार की और इतनी बार।

यदि आचार्यादि आज्ञा दें तो चिकित्सा कराना कल्पता है।

यदि आचार्यादि आज्ञा न दें तो चिकित्सा कराना नहीं कल्पता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! आपने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—आचार्यादि आने वाली विघ्न-बाधाओं को जानते हैं।

सूत्र ६४

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरं ओरालं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगलं सस्सिरीयं महाणुभावं तवोकम्मं उपसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणिं वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छेययं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ।

कप्पइ से आपुच्छित्ता १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणिं वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छयेयं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अण्णयरं ओरालं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगलं सस्सिरीयं महाणुभावं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ?

तं एवइयं वा, एवइखुत्तो वा ?

ते य से वियरेज्जा,

एवं से कप्पइ अण्णयरं ओरालं कल्लाणं सिवं, धण्णं, मंगलं, सस्सिरीयं महाणुभावं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

ते य से नो वियरेज्जा,

एवं से नो कप्पइ अण्णयरं ओरालं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगलं सस्सिरीयं महाणुभावं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

से किमाहु भंते !

आयरिया पच्चवायं जाणंति।८/६४।

वर्षावास रहा हुआ भिक्षु यदि किसी एक प्रकार का उदार, (प्रशस्त) कल्याण कर, शिवप्रद, धन्य कर, मंगलरूप श्रीयुत महाप्रभावक तपःकर्म स्वीकार करना चाहे तो, आचार्य यावत् गणावच्छेदक इसमें से जिसको अगुआ मानकर वह विचर रहा हो उन्हें पूछे विना तपःकर्म स्वीकार करना कल्पता नहीं है,

किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक—इनमें से जिसको अगुआ मानकर वह विचर रहा हो उन्हें पूछकर ही तपःकर्म स्वीकार करना कल्पता है।

वह भी अमुक प्रकार का और इतनी वार।

यदि वे (आचार्यादि) आज्ञा दें तो तपःकर्म स्वीकार करना कल्पता है।

यदि वे (आचार्यादि) आज्ञा न दें तो तपःकर्म स्वीकार करना नहीं कल्पता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! आपने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—आचार्यादि आने वाली विघ्न-बाधाओं को जानते हैं।

सूत्र ६५

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा झूसिए भत्त-पाण-पडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाण्णे विहरित्तए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा,

असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए,
उच्चारं वा, पासवणं वा परिट्ठावित्तए,
सज्झायं वा करित्तए—
धम्मजागरियं वा जागरित्तए।

नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणिं वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छेययं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ।

कप्पइ से आपुच्छित्ता १ आयरियं वा, २ उवज्झायं वा, ३ थेरं वा, ४ पवत्तयं वा, ५ गणिं वा, ६ गणहरं वा, ७ गणावच्छेययं वा, जं वा पुरओ काउं विहरइ—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अपच्छिम मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा झूसिए भत्त-पाण-पडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरित्तए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए—

उच्चारं वा, पासवणं वा परिट्ठावित्तए—

सज्झायं वा करित्तए—

धम्म जागरियं वा जागरित्तए ?

तं एवइयं वा, एवइखुत्तो वा ?

ते य से वियरिज्जा,

एवं से कप्पइ अपच्छिम-मारणंतिय संलेहणा-झूसणा झूसिए-जाव-धम्मे जागरियं वा जागरित्तए।

ते य से नो वियरेज्जा,

एवं से नो कप्पइ अपच्छिम-मारणंतिय संलेहणा झूसणा झूसिए-जाव-धम्म जागरियं वा जागरित्तए।

से किमाहु भंते !

आयरिया पच्चवायं जाणंति।८/६५

वर्षावास रहा हुआ भिक्षु मरण-समय समीप आने पर संलेखना द्वारा कर्म क्षय करना चाहे, भक्तप्रत्याख्यान (आहार का त्याग) करना चाहें, कटे हुए पादप (वृक्ष) के समान एक पार्श्व से शयन करके मृत्यु की कामना नहीं करता हुआ रहना चाहे, (उपाश्रय से) निष्क्रमण-प्रवेश करना चाहे,

अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों का आहार करना चाहे,

मल-मूत्र त्यागना चाहे,

स्वाध्याय करना चाहे,

और धर्म जागरणा करना चाहें तो आचार्य यावत् गणावच्छेदक इनमें से जिसको अगुआ मानकर वह विचर रहा हो—उन्हें पूछे बिना उक्त सभी कार्य करना नहीं कल्पता है। किन्तु आचार्यादि को पूछ करके ही उक्त सभी कार्य करना कल्पता है।

यदि आचार्यादि आज्ञा दें तो सूत्रोक्त सभी कार्य करना कल्पता है।

यदि आचार्यादि आज्ञा न दें तो सूत्रोक्त सभी कार्य करने नहीं कल्पते है।

प्रश्न—हे भगवन् ! आपने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—आचार्यादि आने वाली विघ्न बाधाओं को जानते है।

वस्त्राऽऽतपन-भक्तग्रहण-कायोत्सर्गादौ अनुमति-ग्रहणरूपा अष्टादशी समाचारी

सूत्र ६६

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा अण्णयरिं वा, उवहिं आयावित्तए वा, पयावित्तए वा।

नो से कप्पइ एगं वा, अणेगं वा अपडिण्णवित्ता गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए,
वहिया विहारभूमिं वा, वियारभूमिं वा विहरित्तए,
सज्झायं वा करित्तए,
काउस्सगं वा, ठाणं वा ठाइत्तए।

अत्थि य इत्थ केइ अभिसमण्णागए अहासण्णिहिए एगे वा, अणेगे वा कप्पइ से एवं वइत्तए—इमं ता अज्जो ! तुमं मुहुत्तगं जाणेहि जाव ताव अहं गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए।
वहिया विहारभूमिं वा, वियारभूमिं वा विहरित्तए।
सज्झायं वा करित्तए।
काउस्सगं वा, ठाणं वा ठाइत्तए।

ते य से पडिसुणेज्जा,

एवं से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए।
वहिया विहारभूमिं वा, वियारभूमिं वा विहरित्तए।
सज्झायं वा करित्तए।
काउस्सग्गं वा, ठाणं वा ठाइत्तए।

ते य से नो पडिसुणेज्जा,

एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।

असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारित्तए।
वहिया विहारभूमिं वा, वियारभूमिं वा विहरित्तए।
सज्झायं वा करित्तए।
काउस्सग्गं वा, ठाणं वा ठाइत्तए।८/६६

अठारवीं अनुमतिग्रहण-रूपा समाचारी

वर्षावास रहा हुआ भिक्षु यदि वस्त्र, पात्र, कम्वल, पैर पोंछना या अन्य किसी प्रकार की उपधि को धूप में थोड़ी देर या अधिक देर तक सुखाना चाहे तो एक या एक से अधिक अर्थात् दो या तीन भिक्षुओं को सूचित किए विना

(१) गृहस्थों के घरों में आहार-पानी के लिये निष्क्रमण-प्रवेश करना,
(२) अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों का आहार करना।
(३) उपाश्रय के वाहर स्वाध्याय स्थल में जाना या

शयनाऽऽसनपट्टिकादीनां मानरूपा एकोनविंशतितमी समाचारी

सूत्र ६७

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अणभिग्गहिय सिज्जासणियाणं हुत्तए।

आयाणमेयं—

अणभिग्गहिय सिज्जासणियणिस्स अणुच्चाकुइयस्स अणट्ठावंधियस्स अमिया-सणियस्स अणातावियस्स असमियस्स अभिक्खणं अभिक्खणं अपडिलेहणासीलस्स अपमज्जणा सीलस्स तहा तहा संजमे दुराराहए भवइ।

अणादाणमेयं,—

अभिग्गहिय सिज्जासणियस्स उच्चाकुइयस्स अट्ठावंधियस्स मियासणियस्स आयावियस्स समियस्स अभिक्खणं अभिक्खणं पडिलेहणासीलस्स पमज्जणा-सीलस्स तहा तहा संजमे सुआराहए भवइ।८/६७।

उन्नीसवीं शयनासन पट्टादिमान-रूपा समाचारी

वर्षावास रहे हुऐ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को शय्या और आसन ग्रहण किए विना रहना नहीं कल्पता है।

शय्या और आसन नहीं रखना कर्म वन्ध का कारण है। क्योंकि

(१) शय्या और आसन नहीं ग्रहण करने वाले,

(२) एक हाथ से ऊँचा या नीचा, हिलने वाला और चूं-चूं करने वाला शय्या और आसन रखने वाले,

(३) हिलने वाले शय्या और आसन के तीन या चार से अधिक वन्धन लगाने वाले,

(४) परिमाण से अधिक शय्या और आसन रखने वाले,

(५) यथासमय शय्या और आसन को धूप में नहीं सुखाने वाले,

(६) एषणा समिति के अनुसार शय्या और आसन नहीं लेने वाले,

(७) शय्या और आसन की उभय काल प्रतिलेखना नहीं करने वाले, तथा

(८) शय्या और आसन की प्रमार्जना नहीं करने वाले भिक्षु का संयम दुराराध्य होता है। अर्थात् उस भिक्षु के संयम की आराधना विधिवत् नहीं होती है।

शय्या और आसन रखना कर्म वन्ध का कारण नहीं है। क्योंकि

(१) शय्या और आसन ग्रहण करने वाले,

वर्षा काल के समान हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में तीन उच्चार-प्रश्रवण भूमियों की प्रतिलेखना करना आवश्यक नहीं है ।

प्र०—हे भगवन् ! आपने ऐसा क्यों कहा ?

उ०—वर्षा ऋतु में प्रायः सर्वत्र त्रस प्राणी बीज पनक और हरे अंकुर पैदा हो जाते हैं ।

मात्रक त्रितय-ग्रहणरूपा एकविंशतितमी समाचारी

सूत्र ६९

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिण्हित्तए, तं जहा—

१ उच्चारमत्तए, २ पासवणमत्तए, ३ खेलमत्तए ।८/६९।

इक्कीसवीं तीन मात्रक ग्रहणरूपा समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को तीन मात्रक ग्रहण करने कल्पते हैं, यथा—

१. उच्चार मात्रक=मल त्याग के लिए एक पात्र, २. प्रश्रवण मात्रक=मूत्र त्याग के लिए एक पात्र, ३. श्लेष्म मात्रक=कफ त्याग के लिए एक पात्र ।

विशेषार्थ—वर्षाकाल में प्रायः सर्वत्र त्रस प्राणी बीज पनक और हरे अंकुर उत्पन्न हो जाने के कारण मल-मूत्रादि त्यागने के लिए तीन उच्चार-प्रश्रवण भूमियों का विधान पूर्व सूत्र में किया गया है, किन्तु रात्री का समय हो और वर्षा बहुत जोर से बरस रही हो, उस समय यदि मल-मूत्रादि का त्याग करना हो तो रात्री के घनान्धकार में उच्चार-प्रश्रवण भूमि तक भिक्षु कैसे पहुँचे ? तथा

मल-मूत्रादि के वेग को रोकने का भी आगमों में सर्वथा निषेध है क्योंकि मल-मूत्रादि के वेग को रोकने से अनेक प्राण-घातक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं इसलिए इस सूत्र में इन तीन मात्रकों (पात्र) के रखने का विधान किया गया है।

वर्षाकाल में एक बड़े बरतन में राख, रेत या चूना विपुल परिमाण में रखना चाहिए । मल और कफ त्यागने के मात्रक में मल या कफ त्यागने के पूर्व राख, रेत या चूना डालकर ही मल या कफ त्याग करना चाहिए । मल या कफ त्यागने के बाद भी उन पर राख रेत या चूना अवश्य डालना चाहिए जिससे सम्मूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति न हो । प्रातःकाल होने पर, वर्षा रुकने पर मल-

जिनकल्पी और स्वस्थ स्थविरकल्पी श्रमणों की चर्या में केशलुंचन के सम्बन्ध में केवल उत्सर्ग विधान है, किन्तु अस्वस्थ होने पर केवल स्थविरकल्पी के लिए अपवाद का विधान है।

मस्तक पर जब तक व्रण रहें या नेत्र आदि किसी अङ्गोपाङ्ग की शल्य-चिकित्सा के बाद चिकित्सक ने केशलुंचन के लिए जब तक निषेध किया हो तब तक अपवाद विधान के अनुसार करना चाहिए।

केशलुंचन के दो अपवाद विधान

१ कैंची से केश काटना।

२ उस्तरे से केश साफ करना।

इन अपवाद विधानों की काल मर्यादा—

१ कैंची से पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बाद केश काटते रहना चाहिए।

२ उस्तरे से एक-एक मास के बाद केश साफ करते रहना चाहिए।

अत्यन्त अस्वस्थ निर्ग्रन्थ के केशों को वैयावृत्य करने वाला निर्ग्रन्थ स्वयं कैंची या उस्तरे से साफ करें।

इसी प्रकार अत्यन्त अस्वस्थ निर्ग्रन्थी के केशों को वैयावृत्य करने वाली निर्ग्रन्थी स्वयं कैंची या उस्तरे से दूर करे।

केशलुंचन की अवधि :—

१ स्थानाङ्ग (अ० ३ उ० २ सू १५९) में कहे गए तीन प्रकार के स्थविरों में जो एक भी प्रकार का स्थविर न हो, उसे छह-छह मास के अन्तर से केश लोच कर ही लेना चाहिए।

२ जो तीन प्रकार के स्थविरों में से किसी प्रकार का स्थविर हो वह एक-एक वर्ष के अन्तर से भी केशलुंचन करवा सकता है।

केशलुंचन न करने से होने वाली विराधनाएँ

१ केश स्वेद (पसीना) से गीले रहते हैं, मैल जमता रहता है अतः उनमें जुएँ पैदा हो जाती हैं।

२ मैल और जुओं से होने वाली खाज खुजलाने से जुएँ मर जाती हैं।

३ खाज खुजलाने से मस्तक पर नख से क्षत हो जाते हैं।

४ कैंची या उस्तरे से ही सदा केश साफ करते रहने पर आज्ञा भंग आदि दोष लगेंगे तथा संयम विराधना और आत्म-विराधना भी होगी।

५ नाई से सदा केश साफ करवाने पर पूर्वकर्म या पश्चात्कर्म दोष लगता है, तथा जिनशासन की अवहेलना भी होती है।

यहाँ केवल उत्सर्ग-मार्ग का सूत्र दिया है, क्योंकि निशीथ (उद्देशक १० सूत्र ४८) में भी उत्सर्ग-मार्ग का ही प्रायश्चित्त विधान है।

(क्षमा याचना करने वाले को) क्षमा प्रदान करनी चाहिए। स्वयं को उपशान्त होना चाहिए और (प्रतिपक्षी) को भी उपशान्त करना चाहिए। सरल एवं शुद्ध मन से वार-बार कुशल क्षेम पूछना चाहिए।

जो उपशान्त होता है उसकी ही धर्माराधना सफल होती है।

जो उपशान्त नहीं होता है उसकी धर्माराधना सफल नहीं होती है।

इसलिए स्वयं को उपशान्त होना ही चाहिए।

प्रश्न—हे भगवन्! आपने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—उपशान्त होना ही साधुता है।

उपाश्रयत्रय-संख्या स्वरूपा पञ्चविंशतितमी समाचारी

सूत्र ७३

वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा तओ उवस्सया गिण्हित्तए, तं जहा—

१ वेउव्विया पडिलेहा, २ साइज्जिया, ३ पमज्जणा। ८/७३।

पचीसवीं उपाश्रय त्रय समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को तीन उपाश्रय ग्रहण करना चाहिए, यथा—

इनमें से दो उपाश्रयों की प्रतिदिन प्रतिलेखना करनी चाहिए और एक उपाश्रय (जिसमें निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थियों को वर्षाकाल की समाप्ति तक रहना है) की प्रतिदिन प्रमार्जना करनी चाहिए। ८-७३

विशेषार्थ—वर्षाकाल में प्रायः जीवों की उत्पत्ति अधिक हो जाती है। अतः सम्भव है जिस उपाश्रय में निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थियाँ ठहरे हुए हों उसमें भी कुंथुवे आदि सूक्ष्म जन्तुओं की उत्पत्ति हो जावे या बाढ़ आदि से वह उपाश्रय क्षत-विक्षत हो जावे तो अन्य दो उपाश्रयों में से किसी एक उपाश्रय में जाकर वे रह सकते हैं। इसलिए इस सूत्र में तीन उपाश्रय ग्रहण करने का विधान है। क्योंकि वर्षाकाल के पूर्व गृहस्थ की आज्ञा लेकर जितने उपाश्रय ग्रहण किए हैं। विशेष कारण उपस्थित होने पर उनमें ही वर्षावास रहने के लिए जा सकते हैं। अन्य में नहीं।

"साइज्जिआ पमज्जणत्ति-आर्ष 'साइज्ज' धातुरास्वादने वर्तते, तत्र उपभुज्यमानो य उपाश्रयः । स च 'क्रियमाणं कृतं' इति न्यायात् 'साइज्जिओ' त्ति भण्यते, तत्सम्बन्धिनी प्रमार्जनाऽपि 'साइज्जिआ' अयं भावः—यस्मिन्नुपाश्रये स्थिताः साधव स्तं, १ प्रातः प्रमार्जयन्ति २ पुनर्भिक्षागतेषु साधुषु, ३ पुनः प्रतिलेखनाकाले तृतीय प्रहरान्त चेति वारत्रयं प्रमार्जयन्ति वर्षासु-ऋतु बद्धे तु द्वि । यत्तु सन्देहविषौषध्यां वार चतुष्टय प्रमार्जनमुक्तं तदयुक्तम्" चूर्णौ वार त्रयस्यैवोक्तत्वात् । अयं च विधिरसंसक्ते । संसक्ते तु पुनः पुनः प्रमार्जयन्ति शेषोपाश्रय द्वयं प्रतिदिनं प्रतिलिखन्ति—प्रत्यवेक्षन्ते । मा कोऽपि तत्र स्थास्यति, ममत्वं वा करिष्यतीति तृतीय दिवसे पाद प्रोञ्छनकेन प्रमार्जयन्ति ।"

जिस उपाश्रय में निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थियां ठहरे हुए हों उस उपाश्रय का प्रमार्जन उन्हें दिन में तीन वार करना चाहिए और शेष दो उपाश्रयों का प्रतिलेखन उन्हें दिन में तीन वार करना चाहिए तथा तीसरे दिन प्रमार्जन भी करना चाहिए ।

(१) पूर्वाण्ह में—प्रातःकाल में,

(२) मध्याह्न में—भिक्षा के लिए जाने के वाद,

(३) अपराह्न में—दैनिक प्रतिलेखना के वाद तीसरी पौरुषी में ।

प्रतिदिन प्रतिलेखन करने का उद्देश्य यह है कि उन्हें खाली पड़े देखकर उनमें कोई निवास न करले या उन पर अधिकार न करले ।

दिग्ज्ञापनपूर्वकं गोचरी प्रतिपादिका षड्विंशतितमी समाचारी

सूत्र ७४

वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा कप्पइ अण्णयरिं दिसं वा अणुदिसं वा अवगिज्झिय भत्तपाणं गवेसित्तए।

से किमाहु भंते !

उस्सण्णं समणा भगवंतो वासासु तवसंपउत्ता भवंति।

तवस्सी दुब्बले किलंते मुच्छिज्ज वा, पवडिज्ज वा, तमेव दिसं वा अणुदिसं वा समणा भगवंतो पडिजागरंति। ८/७४।

छब्बीसवीं गोचरी दिशा ज्ञापन समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को किसी एक दिशा या विदिशा की (अर्थात् जिस दिशा या विदिशा में जावे उस दिशा या विदिशा की) साथ वालों को सूचना देकर आहार पानी की गवेषणा करना कल्पता है।

हे भगवन् ! आपने ऐसा क्यों कहा ?

वर्षाकाल में श्रमण भगवन्त प्रायः तपश्चर्या करते रहते हैं। अतः वे तपस्वी दुर्बल क्लान्त कहीं मूर्छित हो जाएँ या गिर जाएँ तो साथ वाले श्रमण भगवन्त उसी दिशा में उनकी शोध करने के लिए जावें।

ग्लानादिकार्ये गमनागमन-मर्यादा निरूपिका सप्तविंशतितमी समाचारी

सूत्र ७५

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, गिलाणहेउं जाव चत्तारि पंच जोयणाइं गंतुं पडिनियत्तए।

अंतरा वि से कप्पइ वत्थए,

नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए। ८/७५।

सत्ताईसवीं ग्लानार्थ अपवाद-सेवन समाचारी

वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को ग्लान (की चिकित्सा) के लिए चार या पांच योजन तक जाकर लौट आना कल्पता है।

मार्ग में रात्रि रहना भी कल्पता है किन्तु जहाँ जावे वहाँ रात रहना नहीं कल्पता है।

विशेषार्थ—इस पर्युषणाकल्प के सूत्र ९ में वर्षाकाल का अवग्रह क्षेत्र एक योजन और एक कोश का कहा गया है। अर्थात् वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ या

समाचारी-फलनिरूपणम्

सूत्र ७६

इच्चेइयं संवच्छरियं थेरकप्पं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोभित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आराहित्ता आणाए अणुपालित्ता—

अत्थेगइया समणा निग्गंथा तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वाइंति सव्वदुक्खाणमंतं करंति।

अत्थेगइया दुच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वाइंति सव्वदुक्खाणमंतं करंति।

अत्थेगइया तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वाइंति सव्वदुक्खाणमंतं करंति।

सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमंति। ८/७६।

अट्ठाईसवीं फल समाचारी

जो इस सांवत्सरिक स्थविरकल्प का सूत्र, कल्प और मार्ग के अनुसार सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श कर पालन कर अतिचारों का शोधन कर जीवन-

पर्यन्त आचरण कर कीर्तन कर (अन्य को करने का उपदेश देकर) भगवान की आज्ञा के अनुसार आराधन कर और अनुपालन कर कितने ही श्रमण निर्ग्रन्थ तो उसी भव से सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, निर्वाण को प्राप्त होते हैं और सर्व दुखों का अन्त करते हैं।

कितने ही श्रमण निर्ग्रन्थ दो भव ग्रहण करके और कितने ही श्रमण निर्ग्रन्थ तीन भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं। किन्तु उत्कृष्ट सात या आठ भव ग्रहण का तो कोई अतिक्रमण नहीं करते हैं—अर्थात् इस सांवत्सरिक स्थविरकल्प का यथाविधि पालन करने वाले अधिक से अधिक सात या आठ भव के वाद तो अवश्य सिद्ध होते हैं यावत् सव दुखों का अन्त करते हैं।

उपसंहार

सूत्र ७७

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहे णयरे, गुणसीलए चेइए—

वहूणं समणाणं, वहूणं समणीणं,

वहूणं सावयाणं, वहूणं सावियाणं

वहूणं देवाणं, वहूणं देवीणं मज्झगए चेव एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ।

पज्जोसवणा कप्पो नामं अज्झयणं सअट्ठं सहेउअं सकारणं ससुत्तं सअट्ठं सउभयं सवागरणं भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ। ८/७७। त्तिवेमि।

पज्जोसवणा कप्पदसा समत्ता

उपसंहार

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर ने राजगृह नगर के वाहर गुणशील चैत्य में अनेक श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों, श्राविकाओं, देवों, देवियों के मध्य में विराजमान होकर इस प्रकार आख्यात, भाषित, प्रज्ञप्त और प्ररूपित किया।

पर्युषणकल्प नाम का यह अध्ययन अर्थ (प्रयोजन) हेतु, कारण, सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ का विवेचन कर वार-वार उपदेश किया।

ऐसा मैं कहता हूं।

विशेषार्थ—इस पर्युषणा कल्प के सम्बन्ध में आचार्य पृथ्वीचन्द्र के टिप्पण में और कल्पसूत्र चूर्णी में इस आशय का कथन है कि अतीत में इस पर्युपणाकल्प का श्रवण तथा वाचन केवल श्रमण समुदाय ही करता था वह भी रात्रि के प्रथम प्रहर में। अर्थात् सबके सामने वाचन करने का स्पष्ट निषेध था।

यदि कोई श्रमण किसी गृहस्थ, अन्य तीर्थिक या अवसन्न (शिथिलाचारी) संयति के सामने कल्पसूत्र का वाचन कर देता वह संवास, संमिश्रवास और शंकादि दोषों का सेवी माना जाता। उसे चार गुरु तथा आज्ञा भंगादि दोष का प्रायश्चित्त दिया जाता।

कल्पसूत्र का सभा (चतुर्विध संघ) के समक्ष सर्व प्रथम वाचन आनन्दपुर में ध्रुवसेन राजा के पुत्र-शोक की विस्मृति के लिए किसी चैत्यवासी परम्परा के श्रमण ने किया था, किन्तु विज्ञ पाठक यह देखें कि स्वयं भगवान महावीर ने चतुर्विध संघ के समक्ष पर्युषणाकल्प के सूत्रार्थों का हेतु कारण सहित विशद विवेचन किया था। इसलिए पूर्वोक्त टिप्पन एवं चूर्णी के कथन का औचित्य कैसे सिद्ध हो सकता है।

पर्युषणा कल्पदशा समाप्त

नवमी मोहणिज्जा दसा

नवमी मोहनीय दशा

सूत्र १

ते णं काले णं ते णं समएणं चंपा नाम नयरी होत्था । वण्णओ ।

उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी ।
(चम्पा नगरी का वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार कहना चाहिए)

सूत्र २

पुण्णभद्दे नाम चेइए । वण्णओ ।

(उस चम्पा नगरी के बाहर) पूर्णभद्र नाम का चैत्य (उद्यान) था ।
(पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन उववाई सूत्र के अनुसार कहना चाहिए)

सूत्र ३

कोणिय राया । धारिणी देवी ।
सामी समोसढे । परिसा निग्गया ।
धम्मो कहिओ । परिसा पडिगया ।

वहाँ कौणिक राजा राज्य करता था, उसके धारणी देवी पटराणी थी ।
(श्रमण भगवान महावीर) स्वामी वहाँ (ग्रामानुग्राम विचरते हुए पधारे ।
परिषद् चम्पा नगरी से निकलकर धर्म श्रवण के लिये पूर्णभद्र चैत्य में आई ।
भगवान ने धर्म का स्वरूप कहा ।
धर्म श्रवण कर परिषद् चली गई ।

सूत्र ४

'अज्जो !' ति समणे भगवं महावीरे बहवे निग्गंथा निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी :—

"एवं खलु अज्जो ! तीसं मोहणिज्ज-ठाणाइं जाइं इमाइं इत्थी वा पुरिसो वा अभिक्खणं अभिक्खणं आयारेमाणे वा समायारेमाणे वा मोहणिज्जत्ताए कम्मं पकरेइ,

तं जहा—

गाहाओ

१ जे केइ[1] तसे पाणे, वारिमज्झे विगाहिआ।
उदएणाऽक्कम्म मारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥१॥

२ पाणिणा संपिहित्ताणं, सोयमावरिय पाणिणं।
अंतो नदंतं मारेइ महामोहं पकुव्वइ ॥२॥

३ जायतेयं समारब्भ बहुं ओरुंभिया जणं।
अंतो धूमेण मारेइ महामोहं पकुव्वइ ॥३॥

४ सीसम्मि जो पहणइ, उत्तमंगम्मि चेयसा।
विभज्ज मत्थयं फाले, महामोहं पकुव्वइ ॥४॥

५ सीसं[2] वेढेण जे केइ, आवेढेइ अभिक्खणं।
तिव्वासुभ-समायारे महामोहं पकुव्वइ ॥५॥

६ पुणो पुणो पणिहिए, हणित्ता उवहसे जणं।
फलेण अदुव दंडेणं महामोहं पकुव्वइ ॥६॥

७ गूढायारी निगूहिज्जा, मायं मायाए छायए।
असच्चवाई णिण्हाइ, महामोहं पकुव्वइ ॥७॥

८ धंसेइ जो अभूएणं, अकम्मं अत्तकम्मुणा।
अदुवा तुमकासित्ति महामोहं पकुव्वइ ॥८॥

९ जाणमाणो परिसाए, सच्चामोसाणि भासए।
अक्खीण-झंझे पुरिसे, महामोहं पकुव्वइ ॥९॥

१० अणायगस्स नयवं, दारे तस्सेव धंसिया।
विउलं विक्खोभइत्ताणं किच्चाणं पडिबाहिरं ॥१०॥

---

१ यावि।
२ सीसावेढेण।

उवगसंतंपि झंपित्ता पडिलोमाहिं वग्गुहिं ।
भोग-भोगे वियारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥११॥

११ अकुमारभूए जे केई, 'कुमार-भूए' ति हं वए ।
इत्थी-विसय-सेवीए महामोहं पकुव्वइ ॥१२॥

१२ अवंभयारी जे केई, 'वंभयारी' ति हं वए ।
गद्दहेव्व गवां मज्झे, विस्सरं नयइ नदं ॥१३॥
अप्पणो अहिए वाले मायामोसं बहुं भसे ।
इत्थी-विसय-गेहीए महामोहं पकुव्वइ ॥१४॥

१३ जं निस्सिए उव्वहइ, जससाहिगमेण वा ।
तस्स लुब्भइ वित्तम्मि, महामोहं पकुव्वइ ॥१५॥

१४ ईसरेण अदुवा गामेणं अणीसरे ईसरीकए ।
तस्स संपय[1]-हीणस्स सिरीअतुलमागया ॥१६॥
ईसा-दोसेण आविट्ठे कलुसाविल-चेयसे ।
जे अंतरायं चेएइ महामोहं पकुव्वइ ॥१७॥

१५ सप्पी जहा अंडउडं, भत्तारं जो विहिंसइ ।
सेनावइं पसत्यारं, महामोहं पकुव्वइ ॥१८॥

१६ जे नायगं चरट्ठस्स नेयारं निगमस्स वा ।
सेट्ठिं वहुरवं हंता महामोहं पकुव्वइ ॥१९॥

१७ वहुजणस्स णेयारं दीवं ताणं च पाणिणं ।
एयारिसं नरं हंता, महामोहं पकुव्वइ ॥२०॥

१८ उवट्ठियं पडिविरयं संजयं सुतवस्सियं ।
विउक्कम्म धम्माओ भंसेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥२१॥

१९ तहेवाणंत-णाणिणं जिणाणं वरदंसिणं ।
तेसिं अवण्णवं वाले महामोहं पकुव्वइ ॥२२॥

२० नेयाइअस्स मग्गस्स दुट्ठे अवयरइ वहुं ।
तं तिप्पयन्तो भावेइ महामोहं पकुव्वइ ॥२३॥

२१ आयरिय-उवज्झाएहिं सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसइ वाले महामोहं पकुव्वइ ॥२४॥

२२ आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं नो पडितप्पइ ।
अप्पडिपूयए थद्धे, महामोहं पकुव्वइ ॥२५॥

---

१ संपरिग्गहियस्स

२३ अवहुस्सुए य जे केई, सुएण पविकत्थइ ।
सज्झाय-वायं वयइ, महामोहं पकुव्वइ ॥२६॥

२४ अतवस्सीए जे केइ तवेण पविकत्थइ ।
सव्वलोय-परे तेणे, महामोहं पकुव्वइ ॥२७॥

२५ साहारणट्ठा जे केइ, गिलाणम्मि उवट्ठिए ।
पभू न कुणइ किच्चं मज्झंपि से न कुव्वइ ॥२८॥
सढे नियडी-पण्णाणे, कलुसाउल-चेयसे ।
अप्पणो य अवोहीए, महामोहं पकुव्वइ ॥२९॥

२६ जे कहाहिगरणाइं, संपउंजे पुणो-पुणो ।
सव्व-तित्थाण-भेयाए महामोहं पकुव्वइ ॥३०॥

२७ जे अ आहम्मिए जोए, संपउंजे पुणो-पुणो ।
सहा-हेउं सही-हेउं, महामोहं पकुव्वइ ॥३१॥

२८ जे अ माणुस्सए भोए, अदुवा पारलोइए ।
तेऽतिप्पयंतो आसयइ महामोहं पकुव्वइ ॥३२॥

२९ इड्ढी जुई जसो वण्णो देवाणं वलवीरियं ।
तेसिं अवण्णवं वाले महामोहं पकुव्वइ ॥३३॥

३० अपस्समाणो पस्सामि देव जक्खे य गुज्झगे ।
अण्णाणी जिण-पूयट्ठी महामोहं पकुव्वइ ॥३४॥
एते मोहगुणा वुत्ता, कम्मंता चित्त-वद्धणा ।
जे तु भिक्खू विवज्जेज्जा चरिज्जत्तगवेसए ॥३५॥
जं पि जाणे इतो पुव्वं, किच्चाकिच्चं वहु जढं ।
तं वंता ताणि सेविज्जा, जेहिं आयारवं सिया ॥३६॥
आयार-गुत्तो सुद्धप्पा धम्मे ट्ठिच्चा अणुत्तरे ।
ततो वमे सए दोसे विसमासीविसो जहा ॥३७॥
सुचत्त-दोसे सुद्धप्पा, धम्मट्ठी विदितायरे ।
इहेव लभते कित्ति पेच्चा य सुगतिं वरे ॥३८॥
एवं अभिसमागम्म, सूरा दढ परक्कमा ।
सव्व-मोह-विणिमुक्का, जाइ-मरणमतिच्छिया ॥३९॥

त्तिवेमि ।

समत्ता मोहणिज्जठाणं-नामा नवमदसा ।

श्रमण भगवान महावीर ने सभी निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा—

हे आर्यो ! जो स्त्री या पुरुष इन तीस मोहनीय स्थानों का कलुषित परिणामों से पुनः-पुनः आचरण करता है वह मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट अनुबन्ध करता है ।

यथा—(गाथाएँ)

पहला मोहनीय स्थान—

जो त्रस प्राणियों को जल में डुवोकर या (किसी यन्त्र विशेष से) प्रचण्ड वेग वाली तीव्र जलधारा डालकर उन्हें मारता है वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ॥१॥

दूसरा मोहनीय स्थान—

जो प्राणियों के मुँह नाक आदि श्वास लेने के द्वारों को हाथ से अवरुद्ध कर उन्हें मारता है वह महामोहनीय कर्म बाँधता है ॥२॥

तीसरा मोहनीय स्थान—

जो अनेक प्राणियों को एक घर में घेर कर अग्नि के धुएँ से उन्हें मारता है वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ॥३॥

चौथा मोहनीय स्थान—

जो किसी प्राणी के उत्तमाङ्ग शिर पर शस्त्र से प्रहार कर उसका भेदन करता है वहा महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ॥४॥

पाँचवां मोहनीय स्थान—

जो तीव्र अशुभ परिणामों से किसी प्राणी के सिर को गीले चर्म के अनेक वेस्टनों से वेष्टित करता है वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है । ॥५॥

छठा मोहनीय स्थान—

जो किसी प्राणी को छलकर के भाले से या डंडे से मारकर हँसता है वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है । ॥६॥

सातवाँ मोहनीय स्थान—

जो गूढ़ आचरणों से अपने मायाचार को छिपाता है, असत्य बोलता है और सूत्रों के यथार्थ अर्थो को छिपाता है वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है ॥७॥

जो बालब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी अपने आपको बालब्रह्मचारी कहता है और स्त्रियों का सेवन करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥१२॥

वारहवाँ मोहनीय स्थान—

जो ब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी "मैं ब्रह्मचारी हूँ" इस प्रकार कहता है वह मानों गायों के बीच मे गधे के समान बेसुरा बकता है और आत्मा का अहित करने वाला वह मूर्ख मायापूर्वक मृषा बोलकर स्त्रियों में आसक्त रहता हैं अत: महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। ॥१३-१४॥

तेरहवाँ मोहनीय स्थान—

जो जिसका आश्रय पाकर आजीविका कर रहा है और जिसके यश से अथवा जिसकी सेवा करके समृद्ध हुआ है—आसक्त होकर उसी के सर्वस्व का अपहरण करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥१५॥

चौदहवाँ मोहनीय स्थान—

जो अभावग्रस्त किसी समर्थ व्यक्ति का या ग्रामवासियों का आश्रय पाकर सर्व साधन सम्पन्न बन जाता है वह यदि ईर्ष्या से आविष्ट एवं संक्लिष्ट चित्त होकर आश्रयदाताओं के लाभ में अन्तराय उत्पन्न करता है तो महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। ॥१६-१७॥

पन्द्रहवाँ मोहनीय स्थान—

सर्पिणी जिस प्रकार अपने अण्डों को खा जाती हैं उसी प्रकार जो स्त्री अपने भर्तार को, मंत्री—राजा को, सेना—सेनापती को तथा शिष्य अपने शिक्षक (धर्माचार्य या कलाचार्य) को मार देता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। ॥१८॥

सोलहवाँ मोहनीय स्थान—

जो राष्ट्रनायक को, निगम (ग्राम आदि) के नेता को तथा लोकप्रिय श्रेष्ठी को मार देता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥१९॥

सत्रहवाँ मोहनीय स्थान—

जो अनेक जनों के नेता को तथा समुद्र में द्वीप के समान अनाथ जनों के रक्षक को मार देता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥२०॥

अठारहवाँ मोहनीय स्थान—

जो पापों से विरत दीक्षार्थी को और संयत तपस्वी को धर्म से भ्रष्ट करता है वह महामोहनीय कर्म को बाँधता है ॥२१॥

उन्नीसवाँ मोहनीय स्थान—

जो अज्ञानी अनन्त ज्ञान-दर्शन सम्पन्न जिनेन्द्र देव के अवर्णवाद (निन्दा) करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥२२॥

बीसवाँ मोहनीय स्थान—

जो दुष्टात्मा अनेक भव्य जीवों को न्यायमार्ग से भ्रष्ट करता है और न्यायमार्ग की द्वेष पूर्वक निन्दा करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। ॥२३॥

इक्कीसवाँ मोहनीय स्थान—

जिन आचार्य या उपाध्यायों से श्रुत और विनय (आचार) ग्रहण किया है उनकी ही जो अवहेलना करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥२४॥

बाईसवां मोहनीय स्थान—

जो अहंकारी आचार्य उपाध्यायों की सम्यक् प्रकार से सेवा नहीं करता है तथा उनका आदर सत्कार नहीं करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥२५॥

जो भिक्षु अब तक किए गये कृत्य-अकृत्यों का परित्याग कर उन-उन संयम स्थानों का सेवन करे जिनसे वह आचारवान् बने। ॥३६॥

जो भिक्षु पंचाचार के पालन से सुरक्षित है, शुद्धात्मा है और अनुत्तर धर्म में स्थित है, वह जिस प्रकार आशिविष-सर्प विष का वमन कर देता है उसी प्रकार पूर्वकृत दोषों का परित्याग कर देता है। ॥३७॥

जो धर्मार्थी भिक्षु शुद्धात्मा होकर अपने कर्तव्य का ज्ञाता होता है उसकी इहलोक में कीर्ति होती है और परलोक में वह सुगति को प्राप्त होता है। ॥३८॥

जो दृढ़ पराक्रमी, शूरवीर भिक्षु सभी मोह स्थानों का ज्ञाता होकर उनसे मुक्त हो जाता है वह जन्म-मरण का अतिक्रमण कर देता है—अर्थात् मुक्त हो जाता है।

मैं ऐसा कहता हूँ—

मोहनीय स्थान नामक नवमी दशा समाप्त।

दसमा आयतिठाण दसा

दशवीं आयतिस्थान दशा[1]

सूत्र १

ते णं काले णं, ते णं समए णं रायगिहे नाम नयरे होत्था । वण्णओ ।

उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था । (नगर वर्णन औपपातिक सूत्र एक के समान)

सूत्र २

गुणसिलए चेइए । वण्णओ ।

उस नगर के बाहर गुणशील नाम का चैत्य (उद्यान) था । (चैत्य वर्णन औपपातिक सूत्र दो के समान)

सूत्र ३

रायगिहे नयरे सेणिए राया होत्था । रायवण्णओ जहा उववाइए जाव चेलणाए सद्धि० (भोगे भुंजमाणे) विहरइ ।

उस राजगृह नगर में श्रेणिक नाम का राजा था । (राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र ११ के समान) यावत् वह चेलना महारानी के साथ परम सुखमय जीवन बिता रहा था ।

---

1 *जिस दशा में आयति अर्थात् भविष्य की कामनाओं का वर्णन है उस दशा का नाम आयतिस्थान दशा है ।*

सूत्र ४

तए णं से सेणिए राया अण्णया कयाइ ण्हाए, कय-बलिकम्मे, कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते, सिरसा ण्हाए, कंठे मालकडे, आविद्धमणि-सुवण्णे, कप्पिय-हारद्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्तय-सुकय-सोभे, पिणद्ध-गेवेज्ज-अंगु-लिज्जगे जाव—कप्परुक्खए चेव सुअलंकियविभूसिए णरिंदे ।

उसने एक दिन स्नान किया, अपने कुल देव के समक्ष नैवेद्य धरा, धूप किया, विघ्न शमनार्थ अपने भाल पर तिलक लगाया, कुल देव को नमस्कार किया, तथा दुस्वप्नों के प्रायश्चित्त के लिए दान-पुन्य किया ।

बाद में भी उसने शिर-स्नान किया[1] गले में माला पहनी, मणि-रत्न जटित स्वर्ण के आभूषण धारण किए, हार, अर्ध हार, तीन सर (लड़) वाले हार नाभि पर्यन्त पहने, कटिसूत्र पहनकर सुशोभित हुआ, तथा गले में गहने एवं अंगुलियों में मुद्रिकायें पहनीं....यावत्....कल्पवृक्ष के समान वह नरेन्द्र श्रेणिक अलंकृत एवं विभूषित हुआ ।

सूत्र ५

सकोरंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं जाव—ससिव्व पियदंसणे नरवई
जेणेवा बहिरिया उवट्ठाण-साला, जेणेव सिंहासणे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता सिंहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ,
निसीइत्ता कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ,
सद्दावित्ता एवं वयासी—
"गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया !"
जाइं इमाइं रायगिहस्स णयरस्स बहिया
आरामाणि य, उज्जाणाणि य
आएसणाणि य, आयतणाणि य

---

1 यशस्तिलक चम्पू के ८ वें आश्वास में पाँच प्रकार के स्नानों का वर्णन है। उनमें एक शिरःस्नान भी है ।

लम्बे केशपास रखने वाला राजा यदाकदा सुगन्धित द्रव्यों से मस्तक धोकर केश विन्यास करता था और बाद में मुकुटादि धारण कर सुसज्जित होता था ।

संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे इहमागच्छेज्जा,
तया णं तुम्हे भगवओ महावीरस्स अहापडिरूवं उग्गहं अणुजाणह,
अहापडिरूवं उग्गहं अणुजाणेत्ता
सेणियस्स रण्णो भंभसारस्स एयमट्ठं पियं णिवेदह।"

हे देवानुप्रियो! श्रेणिक राजा भंभसार ने यह आज्ञा दी है :—

जब पंच याम धर्म के प्रवर्तक अन्तिम तीर्थङ्कर...यावत् सिद्धि गति नाम वाले स्थान के इच्छुक श्रमण भगवान महावीर क्रमशः चलते हुए, गाँव-गाँव घूमते हुए, सुख पूर्वक विहार करते हुए तथा संयम एवं तप से अपनी आत्म-साधना करते हुए आएँ, तब तुम भगवान महावीर को उनकी साधना के उपयुक्त स्थान बताना और उन्हें उसमें ठहरने की आज्ञा देकर (भगवान महावीर के यहाँ पधारने का) प्रिय संवाद मेरे पास पहुँचाना)

सूत्र ७

तए णं ते कोडुंबिय-पुरिसे सेणिएणं रन्ना भंभसारेणं एवं वुत्ता समाणा
हट्ठतुट्ठ जाव—हियया जाव—
"एवं सामी! तह त्ति" आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति,
पडिसुणित्ता एवं सेणियस्स रन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमंति,
पडिनिक्खमित्ता रायगिह-नयरं मज्झंमज्झेण निग्गच्छंति,
निग्गच्छित्ता जाइं इमाइं रायगिहस्स वहिया आरामाणि वा जाव—
जे तत्थ महत्तरगा आणत्ता चिट्ठंति, ते एवं वयंति जाव—
'सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं पियं निवेदेज्जा, पियं भे भवतु'
दोच्चंपि तच्चंपि एवं वदंति,
वइत्ता जाव—जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तब उन प्रमुख राज्य अधिकारियों ने श्रेणिक राजा भंभसार का उक्त कथन सुनकर हर्षित हृदय से...यावत्...हे स्वामिन् आपके आदेशानुसार ही सब कुछ होगा।

इस प्रकार श्रेणिक राजा की आज्ञा (उन्होंने) विनय पूर्वक सुनी, तदनन्तर वे राज प्रासाद से निकले। राजगृह के मध्य भाग से होते हुए वे नगर के बाहर गये आराम....यावत्....घास के गोदामों में राजा श्रेणिक के आज्ञाधीन जो प्रमुख अधिकारी थे उन्हें इस प्रकार कहा...यावत्...श्रेणिक राजा को यह (भगवान

तए णं महत्तरगा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणे व उवागच्छंति,
उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदंति नमंसंति,
वंदित्ता, नमंसित्ता नाम-गोयं पुच्छंति.
नाम-गोयं पुच्छित्ता नाम-गोय पधारेंति,
पधारित्ता एगओ मिलंति,
एगओ मिलित्ता एगंतमवक्कमंति,
एगंतमवक्कमित्ता एवं वयासी—
"जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया भंभसारे दंसणं कंखति,
जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं पीहेति,
जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं पत्थेति,
जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं अभिलसति,

जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया नामगोत्तस्स वि सवणयाए हट्ठतुट्ठे जाव—भवति,

से णं समणे भगवं महावीरे आदिगरे तित्थयरे जाव—सव्वण्णू सव्वदंसी,

पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेण विहरमाणे इह आगए, इह समोसढे, इह संपत्ते जाव—अप्पाणं भावेमाणे सम्मं विहरति।

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सेणियस्स रण्णो एयमट्ठं निवेदेमो—"पियं मे भवतु"

त्ति कट्टु अण्णमन्नस्स वयणं पडिसुणंति।

पडिसुणित्ता जेणेव रायगिहे णयरे तेणेव उवागच्छंति,

उवागच्छित्ता रायगिह-नगरं मज्झंमज्झेण

जेणेव सेणियस्स रन्नो गिहे, जेणेव सेणिएराया, तेणेव उवागच्छंति।

उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलं परिग्गहिय जाव—जएणं विजएणं वद्धावेंति।

वद्धावित्ता एवं वयासी—

"जस्स णं सामी ! दंसणं कंखति, जाव—से णं समणे भगवं महावीरे गुणसिले चेइए जाव—विहरति। तस्स णं देवाणुप्पिया ! पियं निवेदेमो। पियं मे भवतु।"

उस समय राजा श्रेणिक के प्रमुख अधिकारी जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ आये।

उन्होंने श्रमण भगवान महावीर को तीन वार वन्दन नमस्कार किया। नाम गोत्र पूछकर स्मृति में धारण किए। और एकत्रित होकर एकान्त स्थान में गए। वहाँ उन्होंने आपस में इस प्रकार वातचीत की।

"हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा भँभसार—
...जिनके दर्शन करना चाहता है,
...जिनके दर्शनों की इच्छा करता है,
...जिनके दर्शनों की प्रार्थना करता है,
...जिनके दर्शनों की अभिलाषा करता है,

...जिनके नाम-गोत्र श्रवण करके भी हर्षित संतुष्ट...यावत्.. होता है।

ये पंच याम धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर...यावत्... सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं।

अनुक्रमशः सुखपूर्वक गांव-गांव घूमते हुए यहाँ पधारे हैं, (गुणशील

उस समय राजा श्रेणिक ने सेनापति को बुलाकर इस प्रकार कहा :—

हे देवानुप्रिय ! हाथी, घोड़े, रथ और पदाति योधागण—इन चार प्रकार की सेनाओं को सुसज्जित करो......यावत्......मुझे सूचित करो।

सूत्र १३

तए णं से सेणिए राया जाण-सालियं सद्दावेइ, जाव—जाण-सालियं सद्दावित्ता एवं वयासी—

"भो देवाणुप्पिया ! खिप्पामेव धम्मियं जाण-पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।"

उस समय श्रेणिक राजा ने यानशाला के अधिकारी को यावत्....बुलाकर इस प्रकार कहा :—

"हे देवानुप्रिय ! श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार कर यहाँ उपस्थित करो और मेरी आज्ञानुसार हुए कार्य की मुझे सूचना दो।

सूत्र १४

तए णं से जाणसालिए सेणियरन्ना एवं वुत्ते समाणं हट्ठतुट्ठ, जाव—हियए जेणेव जाणसाला तेणेव उवागच्छइ ;

उवागच्छित्ता जाण-सालं अणुप्पविसइ ;
अणुप्पविसित्ता जाणगं पच्चुवेक्खइ ;
पच्चुवेक्खित्ता जाणं पच्चोरुभति,
पच्चोरुभित्ता जाणगं संपमज्जति,
संपमज्जित्ता जाणगं णीणेइ,
णीणेत्ता जाणगं संवट्टेति,
संवट्टेत्ता दूसं पवीणेति,
पवीणेत्ता जाणगं समलंकरेइ,
जाणगं समलंकरित्ता जाणगं वरमंडियं करेइ,
करित्ता जेणेव वाहण-साला तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता वाहण-सालं अणुप्पविसइ,
अणुप्पविसित्ता वाहणाइं पच्चुवेक्खइ,
पच्चुवेक्खित्ता वाहणाइं संपमज्जइ,
संपमज्जित्ता वाहणाइं अप्फालेइ,
अप्फालेत्ता वाहणाइं णीणेइ,

सूत्र १७

तए णं से सेणियराया चेल्लणादेवीए सद्धि धम्मियं जाणपवरं दुरुहइ,
दुरुहित्ता सकोरंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं,
उववाइगमेणं णेयव्वं, जाव—पज्जुवासइ।
एवं चेल्लणादेवी जाव—महत्तरग-परिक्खित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ;
उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदति-नमंसति,
सेणियं रायं पुरओ काउं ठितिया चेव जाव—पज्जुवासति।

उस समय श्रेणिक राजा चेलणा देवी के साथ श्रेष्ठ धार्मिक रथ में वैठा। छत्र पर कोरंट पुष्पों की माला धारण किये हुए (आगे का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिए) यावत्...पर्युपासना करने लगी।

इस प्रकार चेलणा देवी...यावत्...दास-दासियों के वृन्द से घिरी हुई जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ आई। उसने श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार किया और श्रेणिक राजा को आगे करके (अर्थात् श्रेणिक राजा के पीछे) स्थित हुई।...यावत्...पर्युपासना करने लगी।

सूत्र १८

तए णं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रण्णो भंभसारस्स, चेल्लणादेवीए, तीसे महइ-महालयाए परिसाए,
इसि-परिसाए, जइ-परिसाए, मुणि-परिसाए, मणुस्स-परिसाए, देव-परिसाए, अणेग-सयाए जाव—धम्मो कहिओ।
परिसा पडिगया।
सेणियराया पडिगओ।

उस समय श्रमण भगवान महावीर ने ऋषि, यति, मुनि, मनुष्य और देवों की महापरिषद में श्रेणिक राजा भंभसार एवं चेलणा देवी को...यावत्... धर्म कहा। परिषद गई और राजा श्रेणिक भी गया।

सूत्र १९

तत्थेगइयाणं निग्गंथाणं निग्गंथीणं य सेणियं रायं चेल्लणं च देविं पासित्ता णं इमे एयारूवे अज्झत्थिए जाव—संकप्पे समुप्पज्जित्था—

अहो यह चेलणा देवी महान् ऋद्धि वाली है...यावत्...बहुत सुखी है।

वह स्नान बलिकर्म...यावत्....कौतुक मंगल प्रायश्चित्त करके...यावत्... सभी अलंकारों से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के साथ मानुषिक भोग भोग रही है।

हमने देवलोक की देवियाँ नहीं देखी हैं। (हमारे सामने तो) यही साक्षात् देवी है।

यदि चारित्र तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य पालन का कुछ विशिष्ट फल मिलता हो तो हम भी भविष्य में वैसे ही मानुषिक भोग भोगें।

कुछ साध्वियों ने इस प्रकार के संकल्प किये।

सूत्र २१

'अज्जो' त्ति समणे भगवं महावीरे ते बहवे निग्गंथा निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—

"सेणियं रायं चेल्लणादेविं पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव— समुपज्जित्था—

अहो णं सेणिए राया महिड्ढिए जाव—से तं साहू ;

अहो णं चेल्लणा देवी महिड्ढिया सुंदरा जाव—साहूणी।

से णूणं अज्जो ! अत्थे समट्ठे ?"

हंता, अत्थि।

अहो यह चेलणा देवी महान् ऋद्धि वाली है...यावत्...बहुत सुखी है।

वह स्नान बलिकर्म...यावत्....कौतुक मंगल प्रायश्चित्त करके...यावत्... सभी अलंकारों से विभूपित होकर श्रेणिक राजा के साथ मानुपिक भोग भोग रही है।

हमने देवलोक की देवियाँ नहीं देखी हैं। (हमारे सामने तो) यही साक्षात् देवी है।

यदि चारित्र तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य पालन का कुछ विशिष्टि फल मिलता हो तो हम भी भविष्य में वैसे ही मानुपिक भोग भोगें।

कुछ साध्वियों ने इस प्रकार के संकल्प किये।

सूत्र २१

'अज्जो' त्ति समणे भगवं महावीरे ते बहवे निग्गंथा निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—

"सेणियं रायं चेल्लणादेविं पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव— समुपज्जित्था—

अहो णं सेणिए राया महिड्ढिए जाव—से तं साहू;

अहो णं चेल्लणा देवी महिड्ढिया सुंदरा जाव—साहूणी।

से णूणं अज्जो! अत्थे समट्ठे?"

हंता, अत्थि।

श्रमण भगवान महावीर ने बहुत से निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा :—

प्रश्न—"आर्यो! श्रेणिक राजा और चेलणा देवी को देखकर इस प्रकार के अध्यवसाय...यावत्...उत्पन्न हुए?"

"अहो! श्रेणिक राजा महर्द्धिक है...यावत् कुछ साधुओं ने इस प्रकार के विचार किये?"

"अहो चेलणा देवी महर्द्धिक है..यावत् कुछ साध्वियों ने इस प्रकार के विचार किये?"

हे आर्यो! यह वृत्तान्त यथार्थ है।

उत्तर—हां भगवन्! यह वृत्तान्त यथार्थ है।

सव्व-रातिणीएणं जोइणा झियायमाणे णं,

इत्थि-गुम्म-परिवुडे,

महारवेणं हय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-मद्दल-पडु-प्पवाइयरवेणं,

उरालाइं माणुसगाइं कामभोगाइं भुंजमाणे विहरति।

तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव—चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—

"भण देवाणुप्पिया! किं करेमो? किं उवणेमो?

किं आहरेमो? किं आचिट्ठामो?

किं भे हिय-इच्छियं? किं ते आसगस्स सदति?"

जं पासित्ता णिग्गंथे णिदाणं करेइ—

'जइ इमस्स तव-नियम-बंभचेरवासस्स तं चेव जाव—साहू।'

प्रथम निदान[1]

हे आयुष्मान् श्रमणो! मैंने धर्म का निरूपण किया है।

यथा—यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, श्रेष्ठ है, प्रतिपूर्ण है, अद्वितीय है, शुद्ध है, न्याय संगत है, शल्यों का संहार करने वाला है।

सिद्धि, मुक्ति, निर्याण एवं निर्वाण का यही मार्ग है।

यही सत्य है, असंदिग्ध है और सब दुःखों से मुक्त होने का यही मार्ग है।

इस सर्वज्ञ प्रज्ञप्त धर्म के आराधक सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं, और सब दुःखों का अन्त करते हैं।

यदि कोई निर्ग्रन्थ केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उपस्थित हो और भूख-प्यास सर्दी-गर्मी आदि परीषह सहते हुए भी कदाचित् कामवासना

---

१ जैनागमों में निदान शब्द एक पारिभाषिक शब्द है अतः इस शब्द का यहाँ एक विशिष्ट अर्थ है।

निदानम्—निदायते लूयते ज्ञानाद्याराधन-लताऽऽनन्दरसोपेत-मोक्षफला येन परशुनेव देवेन्द्रादिगुणार्द्धि-प्रार्थनाध्यवसानेन तन्निदानम्।

—स्थानाङ्ग अ० ४। सूत्र ३२४

अभिधान राजेन्द्र—नियाण शब्द, पृ० २०६४—जिस प्रकार परशु से लता का छेदन किया जाता है उसी प्रकार दिव्य एवं मानुषिक कामभोगों की कामनाओं से आनन्द-रस तथा मोक्ष रूप रत्नत्रय की लता का छेदन किया जाय-यह निदान शब्द का अभीप्सित अर्थ है।

का प्रबल उदय हो जाए और वह उद्दिप्त काम वासना के शमन के लिए (तप संयम की उग्र साधना रूप) प्रयत्न करे। उस समय वह विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले किसी उग्रवंशीय या भोगवंशीय राजकुमार को आते-जाते देखता है।

छत्र और झारी लिए हुए अनेक दास-दासी किंकर कर्मकर और पदाति पुरुषों से वह राजकुमार घिरा रहता है।

उसके आगे-आगे उत्तम अश्व दोनों ओर गजराज और पीछे-पीछे श्रेष्ठ सुसज्जित रथ चलते हैं।

एक दास श्वेत छत्र ऊँचा उठाये हुए, एक झारी लिये हुए, एक ताड़पत्र का पंखा लिये, एक श्वेत चामर डुलाते हुए और अनेक दास छोटे-छोटे पंखे लिये हुए चलते हैं।

इस प्रकार वह अपने प्रासाद में बार-बार आता-जाता है।

दैदिप्यमान कान्ति वाला वह राजकुमार यथासमय स्नान बलिकर्म यावत् सब अलंकारों से विभूषित होकर सारी रात दीप ज्योति से जगमगाने वाली विशाल कूटागार शाला (राजप्रासाद) में सर्वोच्च सिंहासन पर बैठता है...यावत्...वनितावृन्द से घिरा रहता है।

वह कुशल नर्तकों का नृत्य देखता है, गायकों का गीत सुनता है और वादकों द्वारा बजाए गये वीणा, त्रुटित, घन, मृदंग, मादल आदि वाद्यों की मधुर ध्वनियां सुनता है—इस प्रकार वह मानुषिक कामभोगों को भोगता है।

वह (किसी कार्य के लिए) एक दास को बुलाता है तो चार-पांच दास बिना बुलाए ही आते हैं—वे पूछते हैं—हे देवानुप्रिय ! हम क्या करें, क्या लावें, क्या अर्पण करें और क्या आचरण करें ?

आपकी हार्दिक अभिलाषा क्या है ?

आपको कौनसे पदार्थ प्रिय हैं ?

उसे देखकर निर्ग्रन्थ निदान करता है।

यदि मेरे तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य-पालन का फल हो तो मैं भी (उस राजकुमार जैसे) मानुषिक काम-भोग भोगूं।

सूत्र २३

एवं खलु समाणाउसो ! निग्गंथे णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइए अप्पडिक्कंते अणिंदिए अगरिहिए अविउट्टिए अविसोहिए अकरणाए अणब्भुट्ठिए अहारिए पायच्छित्तं तवोकम्मं अपडिवज्जित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति महड्ढिएसु जाव—चिरट्ठितिएसु।

से णं तत्थ देवे भवइ महड्ढिए जाव—चिरट्ठितिए तओ देवलोगाओ,
आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं, अणंतरं चयं चइत्ता,
जे इमे उग्गपुत्ता महा-माउया[1], भोगपुत्ता महा-माउया,
तेसिं णं अन्नयरंसि कुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाति।
से णं तत्थ दारए भवइ,
सुकुमाल-पाणि-पाए जाव—सुरूवे।

तए णं से दारए उम्मुक्क-बालभावे, विण्णाणपरिणयमित्ते, जोव्वणगमणुप्पत्ते,
सयमेव पेइयं दायं पडिवज्जति।
तस्स णं अतिजायमाणस्स वा पुरओ जाव—
महं दासी-दास जाव—किं ते आसगस्स सदति ?

हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थ निदान करके उस निदान शल्य (पाप) सम्बन्धी संकल्पों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये विना जीवन के अन्तिम क्षणों में देह छोड़कर किसी एक देवलोक में महान् ऋद्धि वाले यावत् उत्कृष्ट स्थिति वाले देव के रूप में उत्पन्न होता है।

आयु, भव और स्थिति के क्षय से वह उस देवलोक से च्यव (दिव्य देह छोड़) कर शुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले उग्र कुल या भोग कुल में पुत्र रूप में उत्पन्न होता है।

वहां वह बालक सकुमार हाथ-पैर वाला....यावत्...सुन्दर रूप वाला होता है।

बाल्यकाल बीतने पर तथा विज्ञान की वृद्धि होने पर वह यौवन को प्राप्त होता है। उस समय वह स्वयं पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त होता है।

प्रासाद से आते-जाते समय उसके आगे-आगे उत्तम अश्व चलते हैं... यावत्...दास-दासियों के वृन्द से वह घिरा रहता है...यावत्...आपको कौन से पदार्थ प्रिय है ?

सूत्र २४

तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलि-पण्णत्तं धम्ममाइक्खेज्जा ?
हंता ! आइक्खेज्जा !

---

१ माउया।

तीसे णं अतिजायमाणीए वा, निज्जायमाणीए वा, पुरतो महं दासी-दास जाव—किं भे आसगस्स सदति ?

जं पासित्ता निग्गंथी णिदाणं करेति–

"जइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियम-बंभचेर जाव—भुंजमाणी विहरामि ; से तं साहुणी ।"

द्वितीय निदान

हे आयुष्मती श्रमणियो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है । यथा—यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है...यावत्...सब दुःखों का अन्त करते हैं ।

यदि कोई निर्ग्रन्थी केवलि प्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उपस्थित हो और भूख-प्यास आदि परिषह सहते हुए भी कदाचित् उसे कामवासना का प्रबल उदय हो जावे तो वह तप-संयम की उग्र साधना द्वारा उस कामवासना के शमन के लिए प्रयत्न करती है ।

उस समय वह निर्ग्रन्थी एक ऐसी स्त्री को देखती है जो अपने पति की केवल एकमात्र प्राण-प्रिया है । वह एक सरीखे (स्वर्ण के या रत्नों के) आभरण एवं वस्त्र पहने हुई है तथा तेल की कुप्पी, वस्त्रों की पेटी एवं रत्नों के करंडिये के समान वह संरक्षणीय है, और संग्रहणीय है ।

निर्ग्रन्थी उसे अपने प्रासाद में आते-जाते देखती है । उसके आगे अनेक दास-दासियों का वृन्द चलता है...यावत्...आपके मुख को कौन-से पदार्थ स्वादिष्ट लगते हैं ?

उसे देखकर निर्ग्रन्थी निदान करती है ।

यदि सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य पालन का फल हो तो मैं भी उस पूर्व वर्णित स्त्री जैसे मानुषिक काम भोग भोगती हुई अपना जीवन विताऊँ ।

सूत्र २७

एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथी णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइआ अप्पडिक्कंता अणिंदिया अगरिहिया अविउट्टिया अविसोहिया अकरणाए अणब्भुट्ठिया अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं अपडिवज्जित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोएसु देवित्ताए उववत्तारी भवइ महड्ढियासु जाव—सा णं तत्थ देवी भवति जाव—भुंजमाणी विहरति । सा ताओ देवलोगाओ–

आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता–

जे इमे भवंति उग्गपुत्ता महामाउया[1] ।

---

[1] महामाउया ।

प्रश्न—उस पूर्व वर्णित स्त्री को तप संयम के मूर्त रूप श्रमण-ब्राह्मण केवलि प्रज्ञप्त धर्म का उभय काल (प्रातः-सायं) उपदेश सुनाते हैं ?

उत्तर—हाँ सुनाते हैं।

प्रश्न—क्या वह (श्रद्धा पूर्वक) सुनती है ?

उत्तर—वह (श्रद्धा पूर्वक) नहीं सुनती है। क्योंकि केवलिप्रज्ञप्त धर्म-श्रवण के लिए वह अयोग्य है।

उत्कट अभिलाषाओं वाली तथा महाआरम्भ महापरिग्रह वाली वह अधार्मिक स्त्री...यावत्...दक्षिण दिशा वाली नरक में नैरयिक रूप में उत्पन्न होती है।

सूत्र २९

एवं खलु समणाउसो !

तस्स नियाणस्स इमेयारूवे पावकम्म-फल-विवागे जं णो संचाएति केवलि-पण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! यह उस निदान शल्य-पाप का विपाक-फल है—जिससे वह केवलि प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण नहीं कर सकती है।

तच्चं णियाणं

सूत्र ३०

एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते-

इणमेव निग्गंथे पावयणे जाव—अंतं करेंति।

जस्स णं धम्मस्स सिक्खाए निग्गंथे उवट्ठिए विहरमाणे पुरा दिगिंछाए जाव—

से य परक्कममाणे पासेज्जा-

इमा इत्थिया भवति एगा एगजाया जाव—"किं ते आसगस्स सदति ?"

जं पासित्ता निग्गंथे निदाणं करेति-

"दुक्खं खलु पुमत्तणए-

जे इमे उग्गपुत्ता महा-माउया।

भोगपुत्ता महा-माउया।

एतेसि णं अण्णतरेसु उच्चावएसु महासमर-संगामेसु उच्चावयाइं सत्थाइं उरसि चेव पडिसंवेदेंति।

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ट्ठितिक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता–

अण्णतरंसि कुलंसि दारियत्ताए पच्चायाति ।

जाव—ते णं तं दारियं-जाव-भारियत्ताए दलयंति ।

सा णं तस्स भारिया भवति एगा एगजाया ।

जाव—तहेव सव्वं भाणियव्वं ।

तीसे णं अतिजायमाणीए वा निज्जायमाणीए वा जाव—"किं ते आसगस्स सदति ?"

हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थ निदान करके उस निदान शल्य की आलोचना या प्रतिक्रमण किये विना जीवन के अन्तिम क्षणों में देह त्याग कर किसी एक देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होता है। वह देव महान् ऋद्धि वाला ...यावत्....उत्कृष्ट स्थिति वाला होता है ।

आयु भव और स्थिति का क्षय होने पर वह उस देवलोक से च्यव (दिव्य देह छोड़) कर (पूर्व कथित) किसी एक कुल में वालिका रूप उत्पन्न होता है... यावत्....उस वालिका को ....यावत्....भार्या रूप में देते हैं ।

वह अपने पति की केवल एकमात्र प्राणप्रिया होती है...यावत्...पहले के समान सारा वर्णन (शिष्यों द्वारा) कहलाना चाहिये ।

उसे अपने प्रासाद में आते-जाते देखते हैं।...यावत्...आपके मुख को कौन-से पदार्थ स्वादिष्ट लगते हैं ?

सूत्र ३२

तीसे णं तहप्पगाराए इत्थियाए तहारूवे समणे वा माहणे वा जाव—धम्मं आइक्खेज्जा ?

हंता ! आइक्खेज्जा ।

सा णं पडिसुणेज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे । अभवि या णं सा तस्स धम्मस्स सवणयाए ।

सा च भवति महिच्छा जाव—दाहिणगामिए णेरइए आगमेस्साए दुल्लभ-बोहिया वि भवति ।

तं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूवे पावए फल-विवागे भवति ।

जं नो संचाएति केवलि पण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए ।

आसायणिज्जा-जाव-अभिलसणिज्जा ।

तं खलु दुक्खं इत्थित्तणए, पुमत्तणए णं साहू ।

जइ इमस्स तव-नियमस्स जाव—अत्थि वयमवि आगमेस्साए इमेयारूवाइं ओरालाइं पुरिस-भोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सामो ।"

से तं साहुणी ।

चतुर्थ निदान

हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है ।

वही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है—शेष पहले के समान...यावत्...सब दुखों का अन्त करते हैं ।

उस केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए कोई निर्ग्रन्थी उपस्थित होती है और क्षुधा आदि परीषह सहते हुए भी उसे कदाचित् काम-वासना का प्रबल उदय हो जाए तो वह तप-संयम की उग्र साधना द्वारा उद्दिप्त काम-वासना के शमन के लिए प्रयत्न करती है ।

उस समय वह निर्ग्रन्थी विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले उग्रवंशी या भोगवंशी पुरुष को देखती है.. यावत्...आपके मुख को कौन-सा पदार्थ स्वादिष्ट लगता है ?

उसे देखकर निर्ग्रन्थी निदान करती है—स्त्री का जीवन दुःखमय है—क्योंकि किसी अन्य गाँव को....यावत्...अन्य सन्निवेश को अकेली स्त्री नहीं जा सकती है ।

यथा—(उदाहरण) आम, बिजोरा या आम्रातक[1] की फांके, मांस के टुकड़े, इक्षु खण्ड, और शाल्मली की फलियां[2] अनेक मनुष्यों के आस्वादनीय प्राप्तकरणीय इच्छनीय और अभिलषनीय होती हैं ।

इसी प्रकार स्त्री का शरीर भी अनेक मनुष्यों के आस्वादनीय...यावत्... अभिलषनीय होता है । इसलिए स्त्री का जीवन दुःखमय है और पुरुष का जीवन सुखमय है ।

---

१ आम्रातक—एक प्रकार का आम जो वन में पैदा होता है ।

—निघण्टुसार संग्रह, पृ० १५८ ।

२ यह शाक वर्ग की वनस्पति है । इसकी फलियां आधा बालिस्त लम्बी और लगभग एक अंगुल चौड़ी होती हैं । पकने पर उनके भीतर से पिस्ते के बराबर चिकना बीज निकलता है ।

—वनौषधि विशेषाङ्क, भाग ६, पृ० ३८० ।

पंचमं णियाणं

सूत्र ३५

एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते–
इणमेव णिग्गंथे-पावयणे जाव—तहेव ।
जस्स णं धम्मस्स निग्गंथो वा निग्गंथी वा
सिक्खाए उवट्ठिए विहरमाणे पुर दिगिछाए जाव—
उदिण्ण-काम-भोगे विहरेज्जा ।
से य परक्कमेज्जा,
से य परक्कममाणे माणुस्सेहिं कामभोगेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा–
"माणुस्सगा खलु कामभोगा
अधुवा, अणितिया, असासया,
सडण-पडण-विद्धंसणधम्मा,
उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणिय-समुब्भवा,
दुरूव-उस्सास-निस्सासा,
दुरंत-मुत्त-पुरीस-पुण्णा,
वंतासवा, पित्तासवा, खेलासवा,
पच्छापुरं च णं अवस्सं विप्पजहणिज्जा ।"
संति उड्ढं देवा देवलोयंसि,
ते णं तत्थ अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेंति,
अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्विय विउव्विय परियारेंति,
अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेंति ।
जइ इमस्स तव-नियमस्स जाव—तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव—
"वयमवि आगमेस्साए इमाइं एयारूवाइं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरामो ।"
से तं साहू ।

पंचम निदान

हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है । यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है । ...यावत्...पहले के समान कहना चाहिए ।

यदि कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उपस्थित हो और क्षुधा आदि परिषह सहते हुए भी उन्हें काम-वासना का प्रबल उदय हो जाए ।

सूत्र ३६

एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथो वा निग्गंथी वा णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइए अप्पडिक्कंते जाव—अपडिवज्जित्ता कालमासे कालं किच्चा,

अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति—

तं जहा—महड्ढिएसु महज्जुइएसु जाव—पभासमाणे।

अण्णेसिं देवाणं अण्णं देविं तं चेव जाव—परियारेइ।

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं तं चेव जाव—पुमत्ताए पच्चायाति जाव—"किं ते आसगस्स सदति ?"

हे आयुष्मान् श्रमणो ! निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी निदान शल्य की आलोचना प्रतिक्रमण-यावत्-दोषानुरूप प्रायश्चित्त किये विना जीवन के अन्तिम क्षणों में देह त्याग कर किसी एक देवलोक में देवता रूप में उत्पन्न होते हैं।

यथा—उत्कृष्ट ऋद्धि वाले उत्कृष्ट द्युति वाले यावत्-प्रकाशमान देवलोक में वे उत्पन्न देव अन्य देव-देवियों के साथ (पूर्व के समान वर्णन) अनंग क्रीड़ा करते हैं।

आयु भव और स्थिति का क्षय होने पर वे उस देवलोक से च्यव (दिव्य देह छोड़) कर (पूर्व के समान वर्णन...यावत्...) पुरुष होते हैं...यावत्... आपके मुख को कौन-सा पदार्थ स्वादिष्ट लगता है ?।

सूत्र ३७

तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा जाव—पडिसुणिज्जा ? हंता ! पडिसुणिज्जा ।

से णं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । अभविए णं से तस्स धम्मस्स सद्दहणयाए ।

से य भवति महिच्छे जाव—दाहिणगामि-णेरइए; आगमेस्साए दुल्लभ-बोहिए यावि भवति ।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागे ।

जं णो संचाएति केवलि-पण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए वा, पत्तियत्तिए वा, रोइत्तए वा ।

प्रश्न—उस (पूर्व वर्णित) पुरुष को तप-संयम के मूर्त रूप श्रमण-ब्राह्मण केवलिप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश सुनाते हैं...यावत्...वह सुनता है ?

उत्तर—हाँ सुनता है ।

प्रश्न—वह केवलिप्ररूपित धर्म पर श्रद्धा प्रतीति करता है ? या रुचि रखता है ?

उत्तर—नहीं, श्रद्धा नहीं कर सकता है—अर्थात् वह सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा करने के अयोग्य है ।

वह उत्कट अभिलाषायें रखता हुआ...यावत्...दक्षिण दिशावर्तीनरक में नैरयिक रूप में उत्पन्न होता है । भविष्य में भी उसे बोध (सम्यक्त्व) की प्राप्ति दुर्लभ होती है ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! उस निदान शल्य का यह विपाक-फल है । इसलिए वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म पर न श्रद्धा प्रतीति कर पाता है और न रुचि रखता है ।

छट्ठं णियाणं

सूत्र ३८

एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते—

तं चेव ।

से य परक्कमेज्जा ;

परक्कममाणे माणुस्सएसु-काम-भोगेसु निव्वेदं गच्छेज्जा ;

माणुस्सगा खलु कामभोगा अधुवा अणितिया ।

से जे इमे आरणिया, आवसहिया, गामंतिया, कण्हुइ रहस्सिया।
णो बहु-संजया, णो बहु-पडिविरया सव्व-पाण-भूय-जीव-सत्तेसु,
अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विपडिवदंति
"अहं ण हंतव्वो, अण्णे हंतव्वा,
अहं ण अज्जावेयव्वो, अण्णे अज्जावेयव्वा,
अहं ण परियावेयव्वो, अण्णे परियावेयव्वा,
अहं ण परिघेतव्वो, अण्णे परिघेतव्वा,
अहं ण उवद्दवेयव्वो, अण्णे उवद्दवेयव्वा।"
एवामेव इत्थिकामेहिं मुच्छिया गढिया गिद्धा अज्झोववण्णा।
जाव—कालमासे कालं किच्चा
अण्णयराइं असुराइं किब्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति।
ततो विमुच्चमाणा भुज्जो एल-मूयत्ताए पच्चायंति।
एवं खलु समणाउसो! तस्स णिदाणस्स जाव—
णो संचाएति केवलि-पण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए वा, पत्तिइत्तए वा, रोइत्तए वा

छठा निदान

हे आयुष्मान् श्रमणो! मैंने धर्म का निरूपण किया है (आगे का वर्णन पूर्व (पृष्ठ) के समान)

उद्दिप्त कामवासना के शमन के लिए तप-संयम की साधना का प्रयत्न करते हुए मानव सम्बन्धी काम-भोगों से उन्हें (निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को) विरक्ति हो जाय। उस समय वे ऐसा सोचें कि "मानव सम्बन्धी कामभोग अध्रुव हैं, अनित्य हैं (पूर्व पृष्ठ के समान) यावत्...ऊपर की ओर देवलोक में देव हैं। वे वहां अन्य देव-देवियों के साथ अनंग क्रीड़ा नहीं करते हैं.......किन्तु

तहेव जाव-
संति उड्ढं देवा देवलोयंसि,
ते णं तत्थ णो अण्णेसिं देवाणं अण्णं देविं अभिजुंजिय परियारेंति
अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्वित्ता परियारेंति,
अप्पणिज्जियाओ वि देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेंति
जइ इमस्स तव-नियम—तं चेव सव्व
जाव—से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा ?
णो तिणट्ठे समट्ठे।
अण्णत्थरुई रुइ-मायाए से य भवति।
से जे इमे आरण्णिया, आवसहिया, गामंतिया, कण्हुइ रहस्सिया।
णो बहु-संजया, णो बहु-पडिविरया सव्व-पाण-भूय-जीव-सत्तेसु,
अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विपडिवदंति-
"अहं ण हंतव्वो, अण्णे हंतव्वा,
अहं ण अज्जावेयव्वो, अण्णे अज्जावेयव्वा,
अहं ण परियावेयव्वो, अण्णे परियावेयव्वा,
अहं ण परिघेतव्वो, अण्णे परिघेतव्वा,
अहं ण उवद्दवेयव्वो, अण्णे उवद्दवेयव्वा।"
एवामेव इत्थिकामेहिं मुच्छिया गढिया गिद्धा अज्झोववण्णा।
जाव—कालमासे कालं किच्चा
अण्णयराइं असुराइं किब्बिसयाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति।
ततो विमुच्चमाणा भुज्जो एल-मूयत्ताए पच्चायंति।
एवं खलु समणाउसो ! तस्स णिदाणस्स जाव—
णो संचाएति केवलि-पण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए वा, पत्तिइत्तए वा, रोइत्तए वा।

छठा निदान

हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का निरूपण किया है (आगे का वर्णन पूर्व (पृष्ठ) के समान)

उद्दिप्त कामवासना के शमन के लिए तप-संयम की साधना का प्रयत्न करते हुए मानव सम्बन्धी काम-भोगों से उन्हें (निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को) विरक्ति हो जाय। उस समय वे ऐसा सोचें कि "मानव सम्बन्धी कामभोग अध्रुव हैं, अनित्य हैं (पूर्व पृष्ठ के समान) यावत्...ऊपर की ओर देवलोक में देव हैं। वे वहां अन्य देव-देवियों के साथ अनंग क्रीड़ा नहीं करते हैं......किन्तु

वह आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर देवलोक से च्यव कर किसी कुल में उत्पन्न होता हैं। (पूर्व के समान वर्णन कहना चाहिये देखें पृष्ठ १६३)

विशेप प्रश्न—वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि रखता है?

उत्तर—हाँ वह केवलि प्रज्ञप्त धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि रखता है?

प्रश्न—क्या वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान, पौपधोपवास करता है?

उत्तर—यह संभव नहीं है। वह केवल दर्शन-श्रावक होता है। जीव-अजीव के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता होता है...यावत्...अस्थि एवं मज्जा में धर्म के प्रति अनुराग होता है। हे आयुष्मान्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही जीवन में इष्ट है। यही परमार्थ है। अन्य सब निरर्थक है।

वह इस प्रकार अनेक वर्षों तक आगार धर्म की आराधना करता है। जीवन के अन्तिम क्षणों में किसी एक देवलोक में देव रूप उत्पन्न होता है।

सूत्र ४१

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागे—

जं णो संचाएति सीलव्वय-गुणव्वय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं पडिवज्जित्तए।

इस प्रकार हे आयुष्मान् श्रमणो! उस निदान का यह पाप रूप विपाक फल है, जिससे वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौपधोपवास नहीं कर सकता है।

अट्ठमं णियाणं

सूत्र ४२

एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते-तं चेव सव्वं। जाव—

से य परक्कममाणे दिव्वमाणुस्सएहि कामभोगेहि णिव्वेदं गच्छेज्जा—

"माणुस्सगा कामभोगा अधुवा जाव—विप्पजहणिज्जा; दिव्वा वि खलु कामभोगा अधुवा, अणितिया, असासया, चलाचलणधम्मा, पुणरागमणिज्जा पच्छापुव्वं च णं अवस्सं विप्पजहणिज्जा।"

जइ इमस्स तव-नियमस्स जाव—अहमवि आगमेस्साए

जे इमे भवंति उग्गपुत्ता महामाउया

सूत्र ४४

तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स वि जाव—पडिसुणिज्जा ?
हंता ! पडिसुणिज्जा ।
से णं सद्दहेज्जा ?
हंता ! सद्दहेज्जा ।
से णं सील-वय जाव—पोसहोववासाइं पडिवज्जेज्जा ?
हंता ! पडिवज्जेज्जा ।
से णं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा ?
णो तिणट्ठे समट्ठे ।

प्रश्न—क्या ऐसे पुरुष को भी श्रमण-ब्राह्मण केवलिप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश सुनाते हैं ?

उत्तर—हां सुनाते हैं ?

प्रश्न—क्या वह सुनता है ?

उत्तर—हां वह सुनता है ।

प्रश्न—क्या वह श्रद्धा करता है ।

उत्तर—हां वह श्रद्धा करता है ।

प्रश्न—क्या वह शीलव्रत, पौषधोपवास स्वीकार करता है ?

उत्तर—हां वह स्वीकार करता है ।

प्रश्न—क्या वह गृहस्थ को छोड़कर मुण्डित होता है एवं अनगार प्रव्रज्या स्वीकार करता है ?

उत्तर—यह संभव नहीं है ।

सूत्र ४५

से णं समणोवासए भवति—
अभिगय-जीवाजीवे जाव—पडिलाभेमाणे विहरइ ।
से णं एयारूवेण विहारेण विहरमाणे
बहूणि वासाणि समणोवासग-परियागं पाउणइ—

पाउणित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसि वा अणुप्पन्नंसि वा बहूइं भत्ताइ पच्चक्खाएज्जा ?

हंता, पच्चक्खाएज्जा,

जइ इमस्स तव-नियम जाव—

अहमवि आगमेस्साए जाइं इमाइं भवंति

"अंतकुलाणि वा, पंतकुलाणि वा, तुच्छकुलाणि वा, दरिद्द-कुलाणि वा, किवण-कुलाणि वा, भिक्खाग-कुलाणि वा, एसि णं अण्णतरंसि कुलंसि पुमत्ताए, पच्चायामि ।

एस मे आया परियाए सुणीहडे भविस्सति ।"

से तं साहू ।

नवम निदान

हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का निरूपण किया है ।....यावत्....उद्दिप्त कामवासना के शमन के लिए तप-संयम की उग्र साधना द्वारा प्रयत्न करता हुआ कदाचित् दिव्य मानुषिक काम भोगों से वह विरक्त हो जाए—(उस समय वह इस प्रकार संकल्प करता है) मानुषिक काम-भोग अध्रुव, अशाश्वत ...यावत्...त्याज्य हैं ।

दिव्य काम-भोग भी अध्रुव...यावत्...भव परंपरा बढ़ाने वाले हैं । यदि इस नियम-तप एवं ब्रह्मचर्य-पालन का फल हो तो मैं भी भविष्य में अंतकुल, प्रान्तकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, कृपणकुल या भिक्षु कुल[1] इनमें से किसी एक कुल में पुरुष बनूं—जिससे मैं प्रव्रजित होने के लिए सुविधापूर्वक गृहस्थ छोड़ सकूं ।

सूत्र ४८

एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथो वा निग्गंथी वा णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइए अपडिक्कंते सव्वं तं चेव जाव—

से णं मंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा ?

सूत्र ४६

एवं खलु समणाउसो ! तस्स नियाणस्स–
इमेयारूवे पाप-फल-विवागे–
जं णो संचाएति तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झेज्जा
जाव—सव्वदुक्खाणमंतं करेज्जा ।

हे आयुष्मान् श्रमणो ! उस निदान शल्य का पापरूप विपाक-फल यह है कि वह उस भव से सिद्ध बुद्ध नहीं होता....यावत्....सब दुखों का अन्त नहीं कर पाता ।

णियाण-रहिय तवोवहाणफलं

सूत्र ५०

एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते–
इणमेव निग्गंथ-पावयणे जाव—से य परक्कमेज्जा
सव्वकाम-विरत्ते, सव्वरागविरत्ते, सव्वसंगातीते, सव्वहा सव्व-सिणेहातिक्कंते, सव्व-चरित्त परिवुड्ढे ।
तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं णाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं,
अणुत्तरेणं परिनिव्वाणमग्गेणं
अप्पाणं भावेमाणस्स
अणंते, अणुत्तरे, निव्वाघाए,
निरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे, केवल-वरनाण-दंसणे समुपज्जेज्जा ।

निदान-रहित तपश्चर्या का फल

हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है । यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है....यावत्....तप-संयम की उग्र साधना करते समय काम, राग, संग-स्नेह से सर्वथा विरक्त हो जाये और ज्ञानदर्शन चारित्र रूप निर्वाण मार्ग की उत्कृष्ट आराधना करे तो उसे अनन्त, सर्व प्रधान, बाधा एवं आवरण रहित, संपूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होता है ।

सूत्र ५१

तए णं से भगवं अरहा भवति–
जिणे, केवली, सव्वण्णू, सव्वदंसी,

किया और उस पूर्वकृत निदान शल्यों की आलोचना प्रतिक्रमण करके...यावत्... यथायोग्य प्रायश्चित स्वरूप तप स्वीकार किया।

सूत्र ५४

ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे
रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए
वहूणं समणाणं, वहूणं समणीणं,
वहूणं सावयाणं, वहूणं सावियाणं,
वहूणं देवाणं, वहूणं देवीणं
सदेव-मणुयासुराए परिसाए मज्झगए
एवमाइक्खइ, एवं भासइ
एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर ने राजगृह नगर के वाहर गुणशील चैत्य में एकत्रित देव-मनुष्य आदि परिपद के मध्य में अनेक श्रमण-श्रमणियों, श्रावक-श्राविकाओं को इस प्रकार आख्यान, भापण, प्रज्ञापन एवं प्ररूपण किया।

सूत्र ५५

आयतिठाणं णामं अज्जो ! अज्झयणं
स-अट्ठं, स-हेउं स-कारणं,
स-सुत्तं, स-अत्यं, स-तदुभयं, स-वागरणं च
भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ।

त्ति वेमि।

हे आर्य ! भगवान महावीर ने इस आयतिस्थान नाम के अध्ययन का अर्थ हेतु एवं व्याकरण युक्त तथा सूत्र अर्थ और स्पष्टीकरण युक्त सूत्रार्थ का अनेक वार उपदेश किया।

आयति-ठाण-णामं दसमी दसा समत्ता
(दसासुयक्खंधो समत्तो)
आयति-स्थान नाम की दशवीं दशा समाप्त
आचारदशा श्रुतस्कन्ध समाप्त

●